सिंघी जैन ग्रन्थ माला

[ग्रन्थांक ४३]

पूर्वाचार्यविरचित प्रश्नव्याकरणाख्य

जयपायड निमित्तशास्त्र

(प्रथमावृत्ति – संस्कृतव्याख्योपेत मूल प्राकृत ग्रन्थ)



SINGHI JAIN SERIES

[NUMBER 43]

JAYAPĀYADA NIMITTAŚĀSTRA

(A WORK OF THE SCIENCE OF PROGNOSTICS MAKING PROPHESIES ON THE BASIS OF THE LETTERS OF SPEECH)

कलकत्ता निवासी

साधुचरित-श्रेष्ठिवर्य श्रीमद् डालचन्दजी सिंघी पुण्यस्मृतिनिमित्त

प्रतिष्ठापित एवं प्रकाशित

सिंघी जैन ग्रन्थमाला

[जैन आगमिक, दार्शनिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, कथात्मक-इत्यादि विविधविषयगुम्फित प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, प्राचीनगूर्जर, राजस्थानी आदि नानाभाषानिबद्ध सार्वजनीन पुरातन वाङ्मय तथा नूतन संशोधनात्मक साहित्य प्रकाशिनी सर्वश्रेष्ठ जैन ग्रन्थावलि]

प्रतिष्ठाता

श्रीमद् डालचन्दजी सिंघीसत्पुत्र

स्व० दानशील-साहित्यरसिक संस्कृतिप्रिय

श्रीमद् बहादुर सिंहजी सिंघी



प्रधान सम्पादक तथा संचालक

आचार्य जिनविजय मुनि

अधिष्ठाता, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ

•

ऑनररी डायरेक्टर

राजस्थान ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, जोधपुर (राजस्थान)

निवृत्त ऑनररी डायरेक्टर

भारतीय विद्या भवन, बम्बई

ऑनररी मेंबर जर्मन ओरिएण्टल सोसाइटी, जर्मनी; भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना (दक्षिण); गुजरात साहित्यसभा, अहमदाबाद (गुजरात); विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर (पंजाब)

•

संरक्षक

श्री राजेन्द्र सिंह सिंघी तथा श्री नरेन्द्र सिंह सिंघी

प्रकाशनकर्ता-

अधिष्ठाता, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ

भारतीय विद्याभवन, बम्बई

प्रकाशक - जयन्तकृष्ण ह. दवे, ऑनररी रजिस्ट्रार, भारतीय विद्या भवन, चौपाटी रोड, बम्बई, नं. ७
मुद्रक - लक्ष्मीबाई नारायण चौधरी निर्णयसागर प्रेस २६ २ कोलभाट स्ट्रीट, बम्बई, नं. २

पूर्वाचार्य विरचित प्रश्नव्याकरणाख्य

जयपायड निमित्तशास्त्र

(प्रथमावृत्ति – संस्कृतव्याख्योपेत मूल प्राकृत ग्रन्थ)

जेसलमेरुदुर्गस्थ - प्राचीनजैनग्रन्थभाण्डागारोपलब्ध
ताडपत्रीयपुस्तकानुसार

संपादनकर्ता

आचार्य, जिन विजय मुनि

अधिष्ठाता, सिंघी जैनशास्त्र शिक्षापीठ

ऑनररी मेंबर – जर्मन ओरिएण्टल सोसाइटी, जर्मनी; भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट
पूना, (दक्षिण); गुजरात साहित्यसभा, अहमदाबाद (गुजरात); विश्वेश्वरानन्द वैदिक
शोध प्रतिष्ठान, होंशियारपुर (पञ्जाब)

•••

ऑनररी डायरेक्टर
राजस्थान ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, जोधपुर (राजस्थान)

•••

निवृत्त ऑनररि डायरेक्टर – भारतीय विद्याभवन, बम्बई



प्रकाशनकर्त्ता

अधिष्ठाता, सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ

भारतीय विद्या भवन, बम्बई

विक्रमाब्द २०१५] प्रथमावृत्ति–५०० प्रति [खिस्ताब्द १९५८

ग्रन्थांक ४३] [मूल्य रू० ६)६०

SINGHI JAIN SERIES

Works in the Series already out.

॥ अद्यावधि मुद्रितग्रन्थनामावलि ॥

1 मेरुतुङ्गाचार्यरचित प्रबन्धचिन्तामणि मूल संस्कृत ग्रन्थ.
2 पुरातनप्रबन्धसंग्रह बहुविध ऐतिह्यतथ्यपरिपूर्ण अनेक निबन्ध संचय.
3 राजशेखरसूरिरचित प्रबन्धकोश.
4 जिनप्रभसूरिकृत विविधतीर्थकल्प.
5 मेघविजयोपाध्यायकृत देवानन्दमहाकाव्य.
6 यशोविजयोपाध्यायकृत जैनतर्कभाषा.
7 हेमचन्द्राचार्यकृत प्रमाणमीमांसा.
8 भट्टाकलंकदेवकृत अकलंकग्रन्थत्रयी.
9 प्रबन्धचिन्तामणि – हिन्दी भाषांतर.
10 प्रभाचन्द्रसूरिरचित प्रभावकचरित.
11 सिद्धिचन्द्रोपाध्यायरचित भानुचन्द्रगणिचरित.
12 यशोविजयोपाध्यायविरचित ज्ञानबिन्दुप्रकरण.
13 हरिषेणाचार्यकृत बृहत्कथाकोश.
14 जैनपुस्तकप्रशस्तिसंग्रह, प्रथम भाग.
15 हरिभद्रसूरिविरचित धूर्ताख्यान. (प्राकृत)
16 दुर्गदेवकृत रिष्टसमुच्चय. (प्राकृत)
17 मेघविजयोपाध्यायकृत दिग्विजयमहाकाव्य.
18 कवि अब्दुल रहमानकृत सन्देशरासक. (अपभ्रंश)
19 भर्तृहरिकृत शतकत्रयादि सुभाषितसंग्रह.
20 शान्त्याचार्यकृत न्यायावतारवार्तिक-वृत्ति.
21 कवि धाहिलरचित पउमसिरीचरिउ. (अप०)
22 महीचन्द्रसूरिकृत [illegible]. (प्रा)
23 श्रीभद्रबाहुआचार्यकृत भद्रबाहुसंहिता.
24 जिनेश्वरसूरिकृत कथाकोषप्रकरण. (प्रा)
25 उदयप्रभसूरिकृत धर्माभ्युदयमहाकाव्य.
26 जयसिंहसूरिकृत धर्मोपदेशमाला. (प्रा)
27 कोऊहलविरचित लीलावई कहा. (प्रा)
28 जिनदत्ताख्यानद्वय (प्रा)
29 स्वयंभूविरचित पउमचरिउ. भाग 1 (अप०)
30 „ „ „ 2
31 सिद्धिचन्द्रकृत काव्यप्रकाशखण्डन.
32 दामोदरविरचित उक्तिव्यक्तिप्रकरण.
33 भिन्नभिन्न विद्वत्कृत कुमारपालचरित्रसंग्रह.
34 जिनपालोपाध्यायरचित खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावलि.
35 उद्योतनसूरिकृत कुवलयमाला कहा. (प्रा)
36 गुणपालमुनिरचित जंबुचरियं. (प्रा)
37 [illegible]सूरिरचित [illegible]-[illegible]. (प्रा)
38 [illegible]सूरिरचित [illegible]. (संस्कृत ग्रंथ)

Shri Bahadur Singh Singhi Memoirs

Dr G. H Bühler's Life of Hemachandrāchārya.
Translated from German by Dr Manilal Patel, Ph. D.

1 स्व. बाबू श्रीबहादुरसिंहजी सिंघी स्मृतिग्रन्थ [भारतीयविद्या भाग 3] सन 1945.
2 Late Babu Shri Bahadur Singhji Singhi Memorial volume. BHARATIYA VIDYA [Volume V] A. D 1945
3 Literary Circle of Mahāmātya Vastupala and its Contribution to Sanskrit Literature. By Dr. Bhogilal J Sandesara, M. A., Ph. D (S.J.S.33.)
4-5 Studies in Indian Literary History Two Volumes. By Prof. P K. Gode M. A. (S. J S. No. 37-38.)

Works in the Press.

॥ संप्रति मुद्यमाणग्रन्थनामावलि ॥

1 विविधगच्छीयपट्टावलिसंग्रह.
2 जैनपुस्तकप्रशस्तिसंग्रह, भाग 2.
3 विज्ञप्तिलेखसंग्रह विज्ञप्ति महालेख विज्ञप्ति त्रिवेणी आदि अनेक विज्ञप्तिलेख समुच्चय.
4 कीर्तिकौमुदी आदि वस्तुपालप्रशस्तिसंग्रह.
5 गुणचन्द्रविरचित मंत्रिकर्मचन्द्रवंशप्रबन्ध.
6 नयचन्द्रविरचित हम्मीरमहाकाव्य.
7 महेन्द्रसूरिकृत नर्मदासुन्दरीकथा. (प्रा०)
8 कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र सटीक. (कतिपय अंश)
9 गुणप्रभाचार्यकृत विनयसूत्र. (बौद्धग्रन्थ)
10 [illegible]कृत-[illegible]चरित.
11 [illegible]सूरिरचित-[illegible].
12 [illegible]चार्यकृत [illegible].
13 [illegible]कृत [illegible]-सटीक
14 हेमचन्द्राचार्यकृत छन्दोनुशासन
15 स्वयंभूविरचित पउमचरिउ. भा 3
16 [illegible] (प्रा)

जेसलमेरमें प्राप्त प्रतिके आद्य पत्र

जेसलमेरमें प्राप्त ताडपत्रीय प्रतिके अंतिम पत्र

किञ्चित् प्रास्ताविक

प्रस्तुत जयपायड† नामक निमित्त शास्त्रकी ताडपत्रपर लिखी हुई प्राचीन प्रति हमको जेसलमेरके एक ज्ञान भण्डारमें प्राप्त हुई थी। इससे पूर्व, हमारे दृष्टिगोचर यह ग्रन्थ नहीं हुआ था, इसलिये हमने इसकी प्रतिलिपि करवा ली, और फिर इसका विषयावलोकन करनेसे हमें यह एक महत्त्वकी रचना ज्ञात हुई, अतः इसको इस सिंघी जैन ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित करनेका हमने संकल्प किया।

जेसलमेरमें प्राप्त यह ताडपत्रीय पुस्तिका, जैसा कि इसके अन्तमें लिखा हुआ है–विक्रम संवत् १३३६ में लिखी गई थी अर्थात् आजसे कोई ६८० वर्ष पूर्वकी लिखी हुई है। इस पुस्तिकाके कुल मिलाकर २२७ ताडपत्र हैं। अक्षर सुवाच्य हैं, पर कहीं कहीं स्याही घिस जानेसे अक्षर अदृश्यसे हो गये हैं। लिपिकर्ता विषय और भाषासे अनभिज्ञ होनेके कारण प्रतिका पाठ बहुत ही अशुद्ध और भ्रष्टस्वरूप-वाला लिखा गया है।

ग्रन्थको प्रेसमें छपनेके लिये देना निश्चित हुआ तब इसका कोई दूसरा प्रत्यन्तर कहीं से मिल सके तो पाठसंशोधनमें विशेष सहायक हो सके इस विचारसे, पूना, पाटण, अहमदावाद, वडोदा आदिके प्रसिद्ध जैन भण्डारोंमें इसकी खोज की गई, पर उसमें सफलता नहीं मिली। पीछेसे भावनगरके भण्डारमें एक कागज पर लिखी प्रति प्राप्त हुई, पर, वह जेसलमेरवाली प्रतिसे भी अधिक भ्रष्ट पाठवाली निकली, अतः संशोधनमें उसका कोई खास उपयोग नहीं हुआ। तब हमने केवल उक्त भ्रष्ट पाठवाली प्रतिके उपरसे ही यथामति पाठ संशोधन आदि करके प्रस्तुत आवृत्तिको, इस स्वरूप में प्रकट कर देनेका प्रयत्न किया है।

ग्रन्थके अवलोकन मात्रसे ही विशेषज्ञ विद्वानको ज्ञात हो जायगा कि इसका पाठसंशोधन करनेमें हमको कितना श्रम उठाना पडा है। पुस्तिकाकी प्राय प्रत्येक पंक्ति भ्रष्ट पाठवाली प्रतीत हो रही है। न मालूम मूलप्रति लेखककी अज्ञानताके कारण ऐसा पाठभ्रष्ट हुआ है अथवा किसी भ्रमवश ऐसा अशुद्ध पाठ लिखा गया है। ग्रन्थगत विषय बहुत ही गोपनीय माना जाता रहा है। कोई विरल ही व्यक्ति इसका अध्ययन-मनन कर सके–ऐसी रहस्यमयी भावना, इस विषयका ज्ञान प्राप्त करनेके विषयमें प्राचीन कालसे चली आ रही है, अत इसकी दुर्लभता और अप्रसिद्धि स्वाभाविक है।

ग्रन्थका विषय निमित्तशास्त्रान्तर्गत प्रश्नविद्या विषयक है। अत इस रचनाका अन्य नाम **प्रश्न-व्याकरण** ऐसा दिया गया है। प्रश्नचूडामणी, प्रश्नप्रकाश आदि नामके इस विषयके कई प्राचीन ग्रन्थोंका उल्लेख अन्यान्य ग्रन्थोंमें मिलते हैं। इसी आवृत्तिके अन्तमें **ज्ञानदीपक** नामक एक संक्षिप्त चूडामणिसार शास्त्र भी मुद्रित किया गया है जो इसी विषयकी एक संक्षिप्त रचना है। यह रचना भी हमें जेसलमेरके एक भण्डारमें फुटकल पन्नोंमें मिली है।

---

† जेसलमेरमें जो पुस्तिका प्राप्त हुई उसकी पट्टिकापर 'जयपाहुड' ऐसा नाम लिखा हुआ था इसलिये हमने ग्रन्थके मुद्रणमें मुख्य शिरोलेख इसी नामसे अंकित कर दिया, पर पीछेसे ऊहापोह करने पर 'जयपाहुड' नहीं परंतु 'जयपायड' ऐसा नाम समुचित मालूम दिया। अत हमने मुखपृष्ठ पर इसी नामका उपयोग करना उचित समझा है। मूल ग्रन्थकी तीसरी गाथामें इसी शब्दका प्रयोग किया गया है

हमारे पूर्वज मनीषियोंने अज्ञात तत्त्वों और मार्गोंको जाननेके लिये एवं कई प्रकारकी गूढ विद्याओंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये नाना प्रकारके चिन्तन, मनन और निदिध्यासन किये हैं। इनके फलस्वरूप जो ज्ञानरत्न उन्हें प्राप्त हुए उनको वे संक्षेपमें एवं सूत्ररूपमें ग्रथित करके ग्रन्थ या प्रकरणके रूपमें लिख करते रहे जिससे भावी सन्ततिको उसका ज्ञान प्राप्त होता रहे। प्रस्तुत ग्रन्थ एक ऐसे ही अज्ञात तत्त्व और मार्गोंका ज्ञान प्राप्त करने करानेका विशेष रहस्यमय शास्त्र है। यह शास्त्र जिस मनीषी या विज्ञको अच्छी तरह अवगत हो, वह इसके आधारसे, किसी भी प्रश्नकर्ताके लाभ-अलाभ, शुभ-अशुभ, सुख-दुःख एवं जीवन-मरण आदि की बातोंके विषयमें बहुत निश्चित और सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकता है और प्रश्नकर्ता को बता सकता है।

प्राचीन ब्राह्मी लिपि, जो हमारी भारतीय लिपियोंकी माता या मूल प्रकृति मानी जाती है, उसकी वर्णमाला या अक्षरमातृकामें मुख्य रूपसे ४५ अक्षर हैं। इनमें

अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः

ये १२ स्वर हैं, और—

क ख ग घ ङ — क वर्ग
च छ ज झ ञ — च वर्ग
ट ठ ड ढ ण — ट वर्ग
त थ द ध न — त वर्ग
प फ ब भ म — प वर्ग
य र ल व — य वर्ग
श ष स ह — श वर्ग

इस प्रकार ७ वर्गोंमें विभक्त ३३ व्यंजन हैं। १२ स्वरोंका १ वर्ग है जिसकी संज्ञा 'अ' है। बाकीके ३३ व्यंजनोंकी 'क' च. ट. त. प. य. श. इस प्रकार क्रमशः ७ संज्ञाएं हैं।

इस प्रकार संपूर्ण वर्णमाला ८ वर्गोंमें विभक्त की गई है। प्रस्तुत शास्त्रमें इन वर्गगत अक्षरोंके अनेक प्रकारके भेद—उपभेद बताये गये हैं। ये अक्षर अनेकानेक गुण और धर्मोंके वाचक और सूचक हैं। प्रत्येक अक्षर निश्चित प्रकारके स्वभाव और स्वरूप का सूचक है और फिर वह जब किसी दूसरे अक्षरके संयोगमें आता है तब, वह उस संयोगके कारण और भी अनेक प्रकारका स्वभाव और स्वरूप बतलानेवाला बन जाता है। अक्षरोंके स्वभाव और स्वरूपका निदर्शन करानेके लिये आलिंगित, अभिधूमित, दग्ध आदि संज्ञाएं बताई गई हैं। इन अक्षरोंमें कुछ अक्षर जीवसंज्ञक हैं, कुछ धातुसंज्ञक हैं और कुछ मूलसंज्ञक हैं। इस प्रकार कई तरहसे अक्षरोंके स्वभाव, गुण और धर्मोंका प्रतिपादन इस शास्त्रमें किया गया है। यह एक बहुत विलक्षण और अद्भुत रहस्यमय शास्त्र है इसमें कोई शंका नहीं है।

प्राचीन जैन ग्रन्थोंमें इस रहस्यमय अतिशयात्मक शास्त्रीय विषयका उल्लेख बहुत जगह मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन कालके जैन आचार्य इस विषयका बहुत ही विशिष्ट ज्ञान रखते थे। इस विषयका निरूपण करनेवाले छोटे-मोटे अनेक ग्रन्थ एवं प्रकरण जैनाचार्यों द्वारा बनाए गये प्रतीत होते हैं जो प्रायः अब विलुप्त-से हो रहे हैं।

इस विषयके ज्ञाताओं और शास्त्रकारोंका अभिमत है कि जिन अज्ञात और गूढ तत्त्वोंका परिज्ञान, सर्वज्ञ केवल्ज्ञानी अपने आध्यात्मिक अन्तरज्ञान द्वारा अनुभूत कर सकता है वैसा ही परिज्ञान, इस शास्त्रका विशिष्ट ज्ञाता, इस शास्त्र द्वारा अनुभूत कर सकता है और इस लिये इस विषयके शास्त्रको 'अर्हच्चूडामणि,' 'केवली चूडामणि,' 'केवली परिज्ञान' आदि नामोंसे भी व्यवहृत किया गया है।

इस विषय पर प्रकाश डालनेवाली बहुत कुछ साहित्यिक सामग्री हमारे पास संग्रहीत हो गई है, पर उसका विस्तृत रूपसे आलेखन करनेका यथेष्ट अवकाश हमें प्राप्त नहीं हो रहा है। अतः अभी तो हमने इस ग्रन्थको, इस प्रकार, केवल मूल रूपमें ही प्रकट कर देनेका यत्न किया है, जिससे इस विषयके जिज्ञासुओंको इस शास्त्रका कुछ आभास प्राप्त हो सके।

इसकी पुनरावृत्ति, विशिष्ट रूपसे करनेका हमारा मनोरथ है, जिसके साथ इस प्रकारकी कुछ अन्य रचनाएँ भी संकलित की जायेंगी और इस विषय पर प्रकाश डालनेवाली अनेक तथ्यपूर्ण बातें भी आलेखित की जायेंगी।

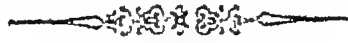
विजयादशमी, संवत् २०१४
(२१, अक्टूबर, १९५८)
अनेकान्तविहार, अहमदाबाद

—मुनि जिन विजय

जयपाहुड निमित्तशास्त्रगत विषयानुक्रम

प्रश्नव्याकरणाख्यं

जयपाहुडनाम निमित्तशास्त्रम् ।



॥ ॐ नमः सर्वज्ञाय ॥

*

करकमलकलितमौक्तिकफलमिव कालत्रयस्य विज्ञानम् ।
यो वेत्ति लीलयैव हि, तं सर्वज्ञं जिनं नमत ॥ १ ॥

ग्रन्थकृत्(ता?) प्रश्नाख्यस्य जयपाहुडस्य निमित्तशास्त्रस्यारम्भे अशेषदुरितप्रक्षयार्थं चाभिप्रेतार्थप्रसिद्ध्यर्थमिष्टदेवतानमस्कार(रः)कर्त्तव्यः । तदर्थमाह—

सिद्धमरूयमणिंदियमकि(क)यमणवन(ज्ज)मच्चुयं वीरं ।
णमिऊण सयलतिहुयणमत्थयचूडामणी(णिं) सिरसा ॥ १ ॥

वीरं शिरसा प्रणम्येति । किंविशिष्टमन्तमुच्यते—सिद्धं । तत्र शुभाशुभकर्मविमुक्तः ॥ [प० १, पा० २] सिद्धः । नास्य रूपं विद्यत इत्यरूपः । रूपं मु(शु)क्ल-कृष्णाद्यात्मकम् । श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि शब्दाद्यर्थविषये न प्रवर्त्तत(न्ते) इत्यनीन्द्रियम् । न कृ(क्रि)यत इत्यकृतकः, द्रव्यरूपेण नित्यत्वात् । नावद्यमनवद्यः । अवद्यं पापम्, अपापं अगर्ह्य इत्यर्थः । न स्वभावात् प्रच्यवति इत्युच्य(त्यच्यु)तः । अशेषकर्मविदारणाद् वीरः । वीरो देवताविशेषः । तं शिरसा प्रणम्येति सम्बन्धोऽयम् । अथवा य न(?) एव सिद्धः अत एवासावरूपी अनिन्द्रिय अकृतक अनवद्य ॥ अच्युतः वीरः इति बभूय(व) स एव सकलत्(त्रि)भुवनमस्तकचूडामणि[ः] लोकाग्रे [प० २, पा० १] निवासित्वात् । अतस्तं देवताविशेषं महावीराख्यं सि(शि)रसा प्रणम्य प्रश्नव्याकरणं शास्त्रं व्याख्यामीति वाक्यशेषाद्गम्यमिति । आरादुपकारित्वात् ॥ १ ॥

सुयदेवयं पणमिमो, जस्स पसाएण गहियव(ध)रियस्स ।
सुत्तस्स अत्थपरिमियसपा(मा?)दरो तीरए काउं ॥ २ ॥

श्रुत सास्त्र(शास्त्रं) ज्ञानमित्यनर्थान्तरम् । तदेतत् श्रुतं देवता श्रुतदेवता । तां श्रुतदेवतां प्रणता(मा)मि । यस्याः प्रसादेन । प्रसाद इत्यनुग्रहोऽभिमुखपरितोष इत्यु[च्य]ते । गृहीतस्य धृ(धृ)तस्य च तस्य सूत्रस्यार्थः । सूत्रार्थः प्राप्यादरः शक्यते कर्तुमिति ॥ २ ॥

मइमाह[प० २, पा० २]प्पुप्पायं, भुवणब्भंतरपवंत(वत्त)वावारं ।
अइसयपुण्णं णाणं, पण्हं जयपायडं वोच्छं ॥ ३ ॥

मति(तिः) बुद्धि(द्धिः) प्रज्ञेति पर्यायाः । बुद्धिप्रभावोत्पत्तिभूतमित्यर्थः । कस्तस्या बुद्धे(द्धेः) प्रभावः । नष्ट-मुष्टिचिन्ता-लाभालाभ-सुख-दुःख-जीवित-मरणाभिव्यञ्जकत्वम् । किञ्च भुवनाभ्यन्तरप्रवृत्तव्यापारम् । व्यापारस्तद्गतपदार्थोपलम्भनम् । अतिस(श)यपूर्णं ज्ञानम् । यदन्यसा(शा)-

मानुपसम्यं सोऽस्मि(स्ति)पा । चतुर्विध(भ)मर्थ निमित्तशास्त्र(त्रं)पदम्याय इत्यस्ति(स्त)था । अतीतानाग[त]वर्तमाननिमित्तायमेकप्रकारं मह-मुष्टिचिन्तामित्वस्यापत्ति(स)वपूर्व प्रमाणमवर्ग[प १ प १]त्यस्ते हेतुभूत जगज्जनस्य व्याख्यास्यामीति ॥ ३ ॥

अ क च ट त प य श पुवे, वग्गो लक्खेज पण्हमाईए ।
उत्तरधरा य तेसिं, जाणे वग्गक्खरसराण ॥ ४ ॥

इह शास्त्रे द्विधा वर्गक्रमः क्रम(मः) । अष्टवर्गी क्रम(मः) पञ्चवर्गी क्रमश्चेति । तत्र प्रथम् । तथा शास्त्रे व्यवहारदर्शनात् । तत्राष्टवर्गक्रमः — 'अ क च ट त प य श' इत्येतेऽष्टौ प्रथमा वर्णा वर्गाणां सूचका इति । प्रश्ना(श्ना)द्यक्षरे प्रश्ना(श्न)मस्तकादौ वा व्यादिश्यानेकार्थोपसङ्ग्रहत्वात् । वर्गाणां अक्षराणां स्वराणां च उत्तरत्वमधरत्वं च वक्ष्यमाणं अवगच्छ ॥ ४ ॥

खेत्तियमित्ते सन्तो, [प १ प २] घेत्तुं पण्हक्खरे परमुहाओ ।
ते सव्वे ठावेउं, तेसिं पढमक्खरपाहुदिं ॥ ५ ॥

यावन्मात्रान् प्रश्नाक्षरान् परमुखात्(त्) गृहीत्वा प्रश्नः नैमित्तिकः । ते सर्वे स्थापयितव्याः प्रथमाक्षरात् प्रभृति तेषामक्षराणाम् ॥ ५ ॥

संजुत्तमसंजुत्त, अणभिहयं अभिहयं च जाणित्ता ।
आलिंगियाभिधूमिय, दड्ढाणि य लक्खए तेसिं ॥ ६ ॥

तेषां प्रश्नाक्षराणां पूर्वकथितानां संयुक्तमसंयुक्तं इति । तत्र संयोगोऽनेकधाऽभिधास्यति । स्वकार-अवर्ग-परवर्ग इति । समागमो वर्णोऽसंयुक्तः । तथाभिघातो वक्ष्यमाणस्व(लि)-खितः [प ४ प १] । आलिङ्गित-अभिधूमित-दग्धसंज्ञका । अक्षराभिहताः अभिघात(त)रहित-मे(मि)ति ॥ ६ ॥

मोत्तो(त्तु) पढमालाव, णेमित्ती अप्पणो य पडिपण्हं ।
सेसेसु जीवमावीपरिचिन्त धागरे मइमं ॥ ७ ॥

पृच्छकस्य सम्भाषणादिकं प्रथमालापं मुक्त्वा प्रश्न(श्न)स्याक्षरान् प्रतिप्रश्ना(श्ना)क्षराणि(णि) च मुक्त्वा अन्यस्मात् प्रश्नं(श्नं) गृहीत्वा धातु-मूल-जीवानां प्रथमवाक्यमेव प्रयुञ्ज्य जीव-मूल-धातु[ष]प्रश्ना(श्नो) प्रश्नानां चेऽपि चिन्तासंकल्पेषी(षी)नयानुसूच्योति निर्देशनम् ॥ ७ ॥

पढमो य सत्तमसरो, क च ट त प य शा य पढमओ वग्गो ।
बिदि-अट्ठमसरसहिया, ख छ ठ थ[प ४ प २]फ र षा बितीओ य ॥८॥

पञ्च-वर्गक्रम इदानीं कथ्यते — अकारः प्रथमः स्वरः । एकारः सप्तमः स्वरः । 'क च ट त प य श' सहितो प्रथमो वर्गः । आकारो द्वितीयः स्वरः । ऐकारोऽष्टमः स्वरः । 'ख छ ठ थ फ र ष' समेतो द्वितीयो वर्गः ॥ ८ ॥

तइओ पंचमेण समं, ग ज ड द ब ल सा य तइयओ वग्गो ।
चउ-दसमसरेण समं, घ झ ढ ध भ व हा य चउत्थो उ ॥ ९ ॥

इकारस्तृतीयः । उ(ओ)कार(रो) नवमः । 'ग ज ड द ब ल स' सहितौ तृतीयो वर्गः । ईकारश्चतुर्थः । औकार(रो) दशमः । 'घ झ ढ ध भ व हा(ह)' समेतौ चतुर्थो वर्गः ॥ ९ ॥

अणुणासिया य [प० ५,पा० १] पंच वि, पंचम-छट्ठा सरा य बोधवा ।
दो चरिमसरा य तहा, पण्हक्खरमूलवत्थुस्स ॥ १० ॥

'ङ ञ ण न माः' पञ्च अनुनासिकाः । 'उ ऊ' पञ्चमषष्ठौ । 'अं अः' द्वौ चरिमस(स्व)रौ भवतः । एते पंच वर्गाः प्रश्नाक्षरमूलवस्तुनि ॥ १० ॥ वर्गरचना समाप्ता ॥

इदानीं जीव-धातु-मूलाक्षराणां विभागोपदर्शनार्थमाह—

आइल्ला तिण्णि सरा, सत्तम णवमो य बारसे जीवं ।
पंचम-छट्ठ-सरस्स[य], धाउं सेसेसु तिसि(सु) मूलं ॥ ११ ॥

आद्याः स्वरास्त्रय 'अ आ इ' । सप्तम 'ए'कारः । नवम 'ओ'कारः । 'अः' द्वादशमः । एते षट् स्वराः जीवस्वराः वि[प० ५,पा० २]ज्ञेयाः । 'उ'कार[ः] पञ्चमः । 'ऊ'कारः षष्ठः । 'अं' एकादशमः । त्रय एते धातुस्वराः । चतुर्थ 'ई'कारः । दशम 'औ'कारः । 'ऐ'कारोऽष्टमः । एते त्रयोमूलस्वराः ॥ ११ ॥

क च ट चउक्के जीयं, अट्ठम-पढमंतिमे यकारे य ।
त प [य ?] चउक्के धाउं, व से य मूलं तु सेसेसु ॥ १२ ॥

'क ख ग घ, च छ ज झ, ट ठ ड ढ' इत्येते पूर्वनिर्दिष्टा[ः] प्रथमवर्गस्य । अष्टमः स(श)का-[प० ६,पा० १]रः, अस्यान्तो हकारः, यकारश्च । जीवाक्षरा एते । 'त थ द ध, प फ ब भ' इत्येतेऽष्टौ । वकारः सकारश्चेत्येते धात्वक्षराः । ङ ञ ण न मा[ः] तथा रकारः, लकारः, षकारश्च इत्येते मूलाक्षरा(राः) ॥ १२ ॥

जीवाद्यक्षराणामुपसंग्रहार्थं स्वराणां गाथामाह—

जीवक्खरेक्कवीसा, तेरह धाउक्खरा मुणेयवा ।
एयारस मूलगया, पणयाला होंति सवे वि ॥ १३ ॥ [प० ६,पा० २]

पूर्वनिर्दिष्टाः स्वराः षट् 'अ आ इ ए उ अः, क ख ग घ, च छ ज झ, ट ठ ड ढ, य श हा' एते जीवाक्षराः एकविंशतिः २१ । पूर्वोक्ता धातुस्वरास्त्रय 'उ ऊ अं' दश चान्ये 'त थ द ध प फ ब भ व सा' एते धात्वक्षरास्त्रयोदश १३ । 'ई ऐ औ, ङ ञ ण न मा, र ल षा' एते मूलाक्षराः एकादश ११ । जीव-धातु-मूलसमेताः पंचचत्वारिंस(श)दक्षराणि भवन्ति ॥ १३ ॥ [प० ७,पा० १]

पढमस(स्स)रसंजुत्ता, सवे लहुअक्खरा य अणभिहया ।
इच्छंति जीवचिंता मि(म)त्तासु विवज्जिया जाव ॥ १४ ॥

उत्सर्गसिद्धाना जीवाद्यक्षराणामपवादः । अकारः प्रथमस्वरः येषामक्षराणामन्तर्भूतः, ते जीवाक्षराः प्रथमस्वरसयुक्ताः । अथवा अकारेण युक्ताः 'क च ट य श ग ज डा' एते(ते)ऽष्टौ लघ्वक्षराः अनभिहता मात्रारहि[प० ७,पा० २]ताश्च जीवचिन्तां कथयन्ति । अनुक्ता अपि धातु-

(उ)मूकभिन्याभ्यां मात्राया[म]न्वर्मुक्ताये चेत्युच्यन्ते । 'ढ द प थ स' इत्येते पंच पश्चमाक्षराः अक्षमिहताः स्वयो मात्रारहिताश्च जीवधातुभिन्नौ कथयन्ति । अकार एक एव मूलमध्ये स्मृतः । अनभिहतो मात्राविवर्जितः स अजीवमूलभिन्नौ कथयति ॥ १४ ॥

मत्तासु जो विअप्पो, जो वि य आलिंगिओ वि अभिघाओ ।
तं सव्वं वण्णेहं, जहक्कमं आणुपुव्वीए ॥ १५ ॥

मात्रासु यो विकल्प इति यत्समायोपम्याधार्पणाया । विकल्पमात्रमेव मात्रामेव उच्यते । स च[ं] तिर्यग्मात्रा अधोमात्रा इति । [प च १]आलिंगितामू(भि)धूमितदग्धमभ्यासता[द] ए(मि)ता । तदेतत् समस्तं यथाक्रममानुपूर्व्या कथयिष्यामः ॥ १५ ॥

पढमो तइओ य सरो, सत्तम णवमो य तिरियमायाओ ।
मूलसर उद्द(ड्ढ)मत्ता, पंचम-छट्ठा अहोमत्ता ॥ १६ ॥

अकारः प्रथमः स्वरः इकारः तृतीयस्वरः एकारः सप्तमस्वरः, ओकारो नवमस्वरः—एते चत्वारः स्वरास्तिर्यग्मात्राः । एतेषु मूलयोनौ कथ्यमानायां तिर्यग्व्यापां वस्त्वां(स्त्वौ) प्रश्नानां वा दर्शयन्ति सुषिरहीनं किमपि कथयन्ति । तद्यथेऽप्यन्तरीक्षतिर्यग्भागस्थितद्रव्यमेव एव स्वराः कथयन्ति । ईकारश्चतुर्थः, ऐकारोऽष्टमः, औकारो दशमः । [प च १] एते चत्वारः स्वराः ऊर्ध्वमात्राः । मूलयोनौ कथ्यमाने ऊर्ध्वयोर्भागसंस्थानं किमपि सुषिरहीनं कथयन्ति । तद्यथा ऊर्ध्वभागस्थितद्रव्यमेते चत्वारः स्वराः कथयन्ति । पंचमः उकारः, षष्ठः ऊकारः एतौ द्वौ स्वरौ अधोमात्रौ मूलयोनौ कथ्यमाने ध्वअधोभागसंस्थानं किमपि सुषिम(र)हीन(नं) कथयत(तः) । तद्यथेऽप्यधोभागव्यवस्थिता(त)मेतावेव स्वरौ कथयतः ॥ १६ ॥ [प १ च १]

जीवाइसह्रण, णियमा द[रि]सेति उद्द(ड्ढ)मत्ताओ ।
य(वि)वरीय अहोमत्ता, णायव्वा जीव-धाऊणं ॥ १७ ॥

ऊर्ध्वमात्रा वि(चे)मिश्रिताक्षरस्वराः स्वराः । ते जीवाक्षराणां पंचपञ्चानामनुपरिगता जीवमूलसंस्थानं दर्शयन्ति । यथा मूलमुच्यते । तथितुल्यचर्यावस्थितानस्वामयत्वमजीवमूलसंस्थानमुच्यते इति । अधोमात्रो(त्रौ) द्वौ स्वरानुगतो(तौ) तौ यदा जीवाक्षरसंयुक्तौ दृश्य(श्ये)ते तदा जीवधातू दर्शयतः । [प ५ च २] को जीवधातुरित्युच्यते—सुवर्णरूप्यताम्र(ताम्र)प्रवाल(ल)चापजातिस्येकमिदेषु धातुरू(रू)पीणों जीवाकृतिसंस्थानः सकम्पाभिनतो जीवधातुरित्युच्यते ॥१७॥

मूलक्खरा छ सव्वे, धाउं दसंति जे अहोमत्ता ।
दंसंति तिरियमत्ता, परपक्खगया उभयपक्खस्स ॥ १८ ॥

मूलाक्षराः 'क च ट त प श ह क थ' इत्यक्षाचेते यत्र य(अ)धोमात्रा(त्राः) स्वरास्तदसंयुक्ता यदा दृश्यन्ते तदा धात्वर्थं दर्शयन्ति । तिर्यग्मात्राभि[प १ च १]र्युक्तास्तथैते जीवाक्षराः, ते मूलाक्षराणामनुपरिगता जीवमूलं दर्शयन्ति । जीवमूलस्य आक्षराः । पूर्वोक्तमेव । तत्रायमक्षराणामनुपरिगतामेते यदा जीवाक्षराणामन्तरे दृश्यन्ते तदा जीवधातुं दर्शयन्ति । जीवधातुसंस्थानं चोक्तमेव ॥ १८ ॥

सविसग्ग-बिंदुसहिया, जीवाइ णिदि[द्दि]संति सद्दाणं ।
अहमत्तलक्खणं पुण, सव्वेसिं सकायगुरुयाणं ॥ १९ ॥

सविसर्ग-बिन्दुसहिता[ः]—विसर्गो द्वादश·(शः) स्वरः, बिन्दुरेकादशः(शः)। [प०१०,पा०२] एतौ द्वौ जीवाक्षरसहितौ जीवयोनिं कुरुतः। यदा च द्वावेतौ स्वरौ मूलाक्षरसहितौ दृश्येते, तदा मूलयोनिं कुर(रु)तः। धात्वक्षरसहितौ धातुयोनिं कुर(रु)तः। अधोमात्रलक्षणमहणेन पंच भण्यन्ते। तद्यथा—स्वकायगुरु[ः], स्ववर्गसंयोगः, परवर्गसंयोगः, अर्द्धाक्रान्तं, त्र्यक्षरसंयोगश्चेति। तत्र तावत् स्वकायगुरोर्लक्षणमुच्यते—द्वौ ककारौ संयुक्तौ, द्वौ गकारौ, द्वौ टकारौ, एवं सर्ववर्गेषु व्याख्या। स्वकायगुरवो जीवयोनौ लब्धायां प्रष्टु· स्वकायचिन्ता कथयन्ति। धातुयोनौ लब्धाया [प०११,पा०१] आत्मार्थे धातुचिन्तां कथयन्ति। मूलयोनौ लब्धायां आत्मार्थे मूलचिन्तां कथयन्ति। स्ववर्गसंयोगस्य लक्षणमुच्यते—खकारस्योपरिगतः ककारः, घकारस्योपरिगतो गकारः, एव वर्गे द्वौ द्वौ स्ववर्गसंयोगौ भवतः। जीवयोनौ लब्धाया प्रष्टुः स्वबन्धुचिन्ता कथयति(न्ति)। एतौ धातुयोनौ लब्धायां स्वबन्धुकृते धातुचिन्ता कथयन्ति। मूलयोनौ लब्धाया स्वबन्धुकृते मूलचिन्तां कथयन्ति। परवर्गसंयोगस्य लक्षणमुच्यते—गकारस्य उपरिगतः चकार(रः), गकारस्य उपरिगतो जकारः, पकारस्योपरिगतो(तः) सकारः; इत्येवमादयोऽन्येऽपि परवर्गसंयोगा जीवयोनौ लब्धाया [प०११,पा०२] प्रष्टुः पर[प]क्षचिन्ता दर्शयति(न्ति)। धातुयोनौ लब्धाया परपक्षकृते धातुचिन्ता कथयन्ति। अर्द्धक्रान्तस्य लक्षणमुच्यते—उपर्यधोधा(उपर्यधोऽ)क्षराणा तुल्यस्वरत्वया मो अर्द्धक्रान्तमित्युच्यते। निदर्शनं यथा—'क्व-न्त्व-म' इत्येवमादय·। चिन्तायां जीवयोनौ लब्धे स्त्री-पुरुषचिन्ता दर्शयन्ति। [प०१२,पा०१] धातुयोनौ लब्धे स्त्रीसंबन्धेन धातुद्रव्य लभ्यत इत्यादेश्यम। मूलयोनौ लब्धे स्त्रीसंबन्धेन मूलद्रव्यं लभ्यत इत्यादेश्यम्। त्र्यक्षरसंयोगस्य लक्षणमुच्यते—त्रिभिस्त्रिभिरक्षरैर्योगः सत्र्यक्षरयोगः। यथा—'त्रि-क्ति-स्मि-स्थि-क्र्ये-प्य(?)' एवमादयोऽन्येऽपि जीवयोनौ लब्धाया पृष्ठ(प्रष्टु.) [प०१२,पा०२] अपत्यचिन्ता कथयति(न्ति)। मूलयोनौ लब्धाया अपत्यार्थे मूलचिन्ता कथयन्ति। धातुयोनौ लब्धाया अपत्यार्थे धातुचिन्ता कथयति(न्ति) ॥ १९ ॥

अभिहयगुरुअक्खरया, रेफ यकार उ ज(ऊ?)कारसंजुत्ता ।
सव्वे य अहोमत्ता, णायव्वा अप्पहाणा य ॥ २० ॥

'रेफ व(य?)कार उकार ऊकार' एतेषा[प०१३,पा०१]मन्यतमेनाधोगतेन जीवधातुमूलाक्षराणा अन्यतमो(मो)ऽक्षरः संयुक्तमु(क्त उ)च्यते। तैरेवाधोगतैः अभिहत उच्यते। तैरेवाधोगतैरप्रधानमुच्यते। जीवयोनौ लब्धाया यस्य कस्यचिदक्षरस्य तले यदा रेफो दृश्य(श्य)ते, तदा प्रष्टा यस्यार्थे पृच्छति तस्याधः का[प०१३,पा०२]ये स(श)स्त्रप्रहार आदेश्यः। जीवयोनौ लब्धाया यस्य कस्यचिद् अक्षरस्य तले यदा यकारो दृश्य(श्य)ते, तदा प्रष्टा यस्यार्थे पृच्छति तस्य स्त्रीनिमित्तं बन्धनमादेश्यम्। जीवयोनौ लब्धाया कस्यचिदक्षरस्य तले उकारो दृश्य(श्य)ते, तदा प्रष्टा यस्यार्थे पृच्छति तस्य मूलमादेश्यम्। जीवयोनौ लब्धाया यस्य कस्यचिद् अक्षरस्य तले ऊकारो दृश्य(श्य)ते तदा प्रष्टा यस्य कृते पृच्छति तस्य [प०१४,पा०१] दीर्घकाल बन्धनमादेश्यम्। एते चार्थो यद्यपि गाथाया नोक्तास्तथाप्येते द(द्र)ष्टव्याः ॥ २० ॥

जाणे सवग्गगरु(गुरु)ए, जोणी जा जस्स अप्पणातणिय ।
परवग्गक्खरठाए, जो उवरिं तस्स सा जोणी ॥ २१ ॥

यानीति स्ववर्गोपरेणाक्षरो गुरुक(कं)म यथा—'कस ग्य' आम्ये चीचो कचम्मः । 'च स्त' आम्ये पाहुप(पं)चम्मा । 'ट स म ख ना(ा) एवमादिभिर्मूलम् । परवर्गेऽक्षरे योऽक्षरो गुरुर्म्य स्वनिबिवर्ता(प १४ म १)म सा योनिः । निदर्शनं—'भ इप ब्र(ा)' इत्येवमादयो यथासंख्येन जीवधातुमूलानि ॥ २१ ॥

आइल्ला चत्तारि वि, जीवा पयडी हवंति ठाणाइं ।
पंचमछट्ठा धाओ, मूलपयडी य दो चरिमा ॥ २२ ॥

आद्या जीवाक्षरा[ः] चत्वारः । 'अ इ ए ओ'कारो वर्णोऽत्र पञ्चमो(मो) न गृहीतः । एते जीवाक्षरप्रयुक्तपरिगता नि(नि)(प १५ म १)श्च(श्च)यं जीवमेव दर्शयन्ति । एता(वे) एव जीवाक्षराः जीवमङ्का धात्वक्षरप्रयुक्तपरिगता जीवधातुं कुर्वन्ति । मूलाक्षरप्रयुक्तपरिगता जीव मूलं दर्शयन्ति । जीवमूल-जीवधात्वोर्भेदं मनुक्तमिति । पंचम उकार(रः), षष्ठ ऊकारः, एतौ द्वौ धातुस्वरौ धात्वक्षरप्रमाणयोक्तौ धातुमेव दर्शयतः । [प १५ म १] 'अं' धातुस्वरस्वरीकः केवलो धातुमेव कथयति । 'अः' चरिमो जीवस्वरः केवलो जीवमेव कथयति । पूर्वोक्तानां जीव(वा)क्षरप्रयुक्तपरिगतो चरिमसंज्ञानुस्वारो जीवमेव कथयति । तदक्षरप्रमाणको भवति । धात्व-क्षरप्रयुक्तपरिगतोऽनुस्वारो धातुमेव कथयति । मूलाक्षरोपरिगतोऽनुस्वारो मूलं दर्शयति । 'अः' चरिमसंज्ञो विसर्ग[ः] जीवाक्षरप्रमाणकमाश्रित(तो)जीवमुपदर्शयति । धात्वक्षरप्रमाणो धातुं दर्शयति । मूलाक्षरप्रमाणकमाश्रितो विसर्गः [मूल]मेव दर्शयति । चरिमसंज्ञकं द्व(वि)त्यपि स्वरं(प ११ म १)ते(ते) भवतीति । सामान्ययोनि(निः) समाप्ता ॥ २२ ॥

शी(शि)ष्यस्यविभागार्थं प्रयोजनत्वात् उपन्यासः—

उर-कंठ-जीहमूला ताळुआ तह य उद्धताळुआ ।
दंता उट्ठा अणुणासिया य मुद्धक्खा(मुद्धक्खा)रा चेव ॥ २३ ॥

तत्र स्थानानि वर्णानां यथोक्तयो । उरः(उरस्याः), कण्ठ्याः जिह्वामूलीयाः, तालव्याः, ऊर्ध्वतालव्याः, दन्त्याः, ओष्ठ्याः अनुनासिकाः मूर्धन्याश्चेति वर्णस्थानानीत्यर्थः ॥ २३ ॥

समिसग्गो य अकारो, उकारो (ठरो) हकारो य जो हवइ हस्सो ।
हस्सस(स्स)रा य कंठा, जीहामूला क ख ग घा य ॥ २४ ॥

सर्व(वि)सर्गः, अकारः हकारश्च उरस्यौ उ(र)स्यौ ज्ञातव्यौ । ह्रस्वस्वराः [प ११ म १] अ इ ए उ चत्वारोऽप्येते कण्ठ्याः । 'क ख ग घ' इत्येते चत्वार(रो) जिह्वामूलीयाः ॥ २४ ॥

सचउत्था(था)य पढमा, ताळुआ य छ ज झा य चत्तारि ।
ट ठ ड ढ वीओ य सरो, हवंति खलु उद्धताळुआ ॥ २५ ॥

प्रथमवर्गेण चतुर्थो चकार(रः), चवर्गस्य प्रथमो चकारः, प्रथमवर्गेण प्रथमः

स(श)कारः । 'च छ ज झ' इत्येते चत्वारस्तालव्याः । 'ट ठ ड ढ' इत्येते [प० १७, पा० १] चत्वारः, द्वितीयस्वर आकारः, पञ्च एते मूर्द्धतालव्याः ॥ २५ ॥

त थ द ध सा पु(प)ण दंता, प फ ब भ धातुस्सरा वकारोट्ठा(ट्ठा) ।
वग्गचरिमाणुणासी, मुद्धण्णा सेसया सव्वे ॥ २६ ॥

'त थ द ध सा' इत्येते पञ्च दन्त्या[ः] । 'प फ ब भ' इत्येते चत्वार(रः), धातुस्वरौ च द्वौ पञ्चमषष्ठौ उ ऊ, 'व' कारश्च, सप्तैते औष्ठ्याः । वर्गचरिमग्रहणेन पञ्चमानुनासिका 'ङ ञ ण न माः' गृह्यन्ते । [प० १७, पा० २]अथवा वर्गग्रहणेनानुनासिकाः, स्वराणां च मध्ये चरिमो ऽनुनासि[को] विन्दुः, 'अं' इत्येते च षडनुनासिकाः । शेषाः–स्वराः के ते ? 'ई ऐ औ' त्रयः । शेषास्त्र(श्चा)क्षराः 'र ल षा' इत्येते त्रयः । एकत्र षड् मूर्द्धन्याः । **सि(शि)क्षाप्रकरणं समाप्तम्** ॥ २६ ॥

अत्रावसरप्राप्ता अक्षरलब्धिः, [तां] नामप्रकरणेऽभिधास्यति । इह ति(तु) प्राप्तिमात्र-मुच्यते । तदर्थं गा[प० १८, पा० १]थामाह–

ठाणं ठाणं एक्केक्कयं तु आलिंगिघा(या)इ हायंति ।
उरसादी ठाणाणं, तालवे उवरिमो ठाइ ॥ २७ ॥

स्थान स्थानमेकैकमालिंगिताभिधूमितदग्धास्त्यजन्ति । उरस्या निहतास्तालव्ये[त्त] इत्येवं क्रम अभिहत इति । अभिहतग्रहणेनालिंगिताभिधूमितदग्धा उच्यन्ते । उत्तरस्यो(उरस्यो)ऽन-भिहतो असयुक्त उरस्य एव लभते [प० १८, पा० २] अक्षरम् । उरस्य आलिंगितकण्ठस्थानं लभते । उरसोऽभिधूमितो जिह्वामूलीय लभते । उरस्यो दग्धस्तालव्यं लभते । कण्ठ्योऽनभिहतासयुक्तः कण्ठ्य एव लभते । कण्ठ्य आलिंग्य(गि)तो जिह्वामूलीयं लभते । कण्ठ्योऽभिधूमितस्तालव्यं लभते । कण्ठ्यो दग्धो मूर्द्धतालव्य लभते । जिह्वामूलीयोऽनभिहतासयुक्तो जिह्वामूलीयं लभते । स एवालिंगितस्तालव्यं [प० १९, पा० १] लभते । स एवाभिधूमित ऊर्द्धतालव्यं लभते । स एवा(व?)-दग्धो दन्त्य लभते । तालव्यो अनभिहतासयुक्तस्तालव्य लभते । स एव दग्धो दन्त्यं लभते । तालव्यो(व्य) आलिंगितः ऊर्द्धतालव्य लभते । स एवाभिधूमितो दन्त्य लभते । स एव दग्धो(ग्ध) उ(औ)ष्ठ्य लभते । मूर्द्धतालव्योऽनभिहतासयुक्तः स्वस्थानं लभते । स एवालिंगितो दन्त्य लभते । स एवाभि[धूमि]त उ(औ)ष्ठ्य लभते । स एवा(व?)दग्धो अनुनासिकं लभते । दन्त्यो अनभिहतासयुक्त(क्तः)स्वस्थानं लभते । स एवालिं[प० १९, पा० २]गित औष्ठ्यं लभते । स एवाभिधूमितो अनुनासिकं लभते । स एव दग्धो मूर्द्धन्य लभते । औष्ठ्यो अ(ऽ)नभि हतासंयुक्तः स्वस्थान लभते । स एवालिंगितोऽनुनासिकं लभते । औष्ठ्योऽभिधूमितो मूर्द्धन्य लभते । दग्ध उरस्य लभते । अनुनासिको अनभिहतासंयुक्त' स्वस्थानं लभते । आलिंगितो मूर्द्धन्य लभते । [प० २०, पा० १] अभिधूमित उरस्य लभते । दग्धः कण्ठ्य लभते । मूर्द्धन्यो अनभिहतासयुक्तः स्वस्थान लभते । आलिंगित उरस्यं लभते । अभिधूमितः कण्ठ्य लभते । स एव दग्धो जिह्वामूलीय लभते ॥ २७ ॥

॥ एवं स(सा)मासि(सि)कं शिक्षाप्रकरणं समाप्तम् ॥

—∞◇∞—

पढमा सइओ य सरो, सत्तम णवमो य सकडा हस्सा ।
वियडा अंतरद्दी[प १ व १]हा वि चउत्थो पचमो चेव ॥ २८ ॥

अकार इकार-एकार ओकारः, अकाराद्यमी संकटसंज्ञाः हस्वाश्च । प्रश्नाक्षराणां मध्ये यदा संकटस्वरबाहुल्यं भवति तदा प्रष्टा यस्यार्थे मोक्षं पृच्छति आत्मनो(नः) परस्य वा तस्य तदा मोक्षो [नै]व[ती]त्यादेवं(दवम्।) लाभमपि न लभते । कुशलप्रश्नेऽपि न प्राप्नोतीत्यादेवं(दवम्) । एतद् व्यतिरिक्तमन्यद् यदा [प ११ व १] पृच्छति तो(ते)षां संकटसंज्ञानां स्वराणां बाहुल्ये सर्वमेव सम्भव इत्यादेरवम् । विकटा अन्तरदीर्घाः । के इत्यत्रोच्यते – द्वितीय आकारः चतुर्थ ईकारः, पंचम ऊकारः, षष्ठो विकटसंज्ञा अन्तरदीर्घाश्च । प्रश्नाक्षराणां मध्ये यदा विकटसंज्ञानां स्वराणां बाहुल्यं भवति तदा प्रष्टा यस्य कस्यचिद् परस्यात्मनो वा बन्धमोक्षार्थं [प ११ प १] पृच्छति तदा मोक्षो भवतीत्यादेरवम् । लाभमपि लभते । कुशलमिमामं सिध्यति इत्यादेरवम् । एतद् व्यतिरिक्तं यदन्यत्तु(त्) कामादिकं पृच्छति तत्र भवतीत्यादेरवम् ॥ २८ ॥

सकडा(ड)वियडा सेसा, सहा[व]दीहा य तिण्णि णि[य]मणं ।
छट्ठट्ठमा य बेण्णि विसमस्सरो चेव णायव्वो ॥ २९ ॥

संकट-विकटाः शेषाः समावर्णाश्च । पञ्च ऊकारः एकारोऽन्त्यः आकारो हस्वा इत्यते त्रयः । शेषमक्षरद् बिन्दु-विसर्जनीयाः । प्रश्नाक्षराणां मध्ये संकट-विकटसंज्ञानां बाहुल्यं भवति तदा प्रष्टा परस्मैवा यदि वा परस्यार्थे बन्धमोक्षार्थं [प ११ प १] पृच्छति तदा भेदेन सुम्यत इति वक्तव्यम् । लाभमपि किंचिदल्पं भेदेन लभते । कुशलमेवोऽपि भवेदेव भवतीत्यादेवम् । यदन्यदेतद् व्यतिरिक्तं शुभमशुभं वा पृच्छति तदन्यदर्थं भवतीत्यादेरवम् ॥ २९ ॥

पढमा(म त)इया य वियडा, बीय चउत्था य सकडा वग्गा ।
सेसा क(सं)कड-वियडी(डा), अ क ई पवस्स भेदविम ॥ ३० ॥

प्रथमाः – 'क च ट त प य श ा(षा), [तृतीयाः] ग ज ड द ब ल स ा' एतौ विकटसंज्ञौ । प्रागुक्तम् फलम् । द्वितीय(याः) – 'ख छ ठ थ फ र ष ाः चतुर्थ(र्थाः) – 'घ झ ढ ध भ व ह ा' एते संकटसंज्ञाः । पूर्ववत् फलम् । शेषमक्षरम्[ण] 'ङ ञ ण न म ा' एते उभयसमावाः । एवं विमल इत्यनुच्यते ॥ ३० ॥ [प ११, प १]

॥ एवं संकट विकटप्रकरणं समाप्तम् ॥

वग्गो गणणाद्देसे, स(व)वेसु य उत्तराहरो होइ ।
वग्ग(ग्गु)त्तरा य नियमा, अ च ट त य वग्गत(ग्गुत्त)रा चउरो ॥ ३१ ॥

उत्तराधरं चतुर्विधं – वर्णोत्तरं गणोत्तरं आलोकोत्तरं द्रव्योत्तरं चेति । तत्र च संकल्पनाद् – ११११ चैतेष उत्तर आश्रया य वेति आद्ये वर्णाक्षराणामुत्तरार्थं । तदर्थं भागः वर्णोत्तरम्-प्यते – [प ११ प १] 'अ च ट त य' एते वर्णाः । उत्तरा प्रधाना इत्यर्थः । तस्मादेते(न्ये) 'क ट प श' संज्ञाप्रस्तारः अधरा अप्रधानामेति ॥ ३१ ॥

एतदेवाह –

सेसा हवंति अहरा, वग्गा चत्तारि क ट प सा जाण ।
एक्केक्कंमि चउक्के, पुणो वि इणमो कमो णेओ ॥ ३२ ॥

अ[ष्टव]र्गक्रम एव, चत्वारो वर्गा अधराः । के ते? 'क ट प सा(शा)' शेषग्रहणाद् भण्यते ॥ ३२ ॥

गाथापश्चार्द्धस्यान्य[प० २३, पा० २]गाथया विभाषा क्रियते –

एक्केक्कंनि(मि) चउक्के, पुणो पि(वि) इणमो कमो उ विण्णेओ ।
दो उत्तरा उ तेसिं, दो चिअ अहराधरा विदिए ॥ ३३ ॥

निरूपित उत्तरचतुष्क अधरचतुष्क चेति । तत्र चतुष्कद्वये भूय[:] प्रधानाप्रधानदर्शनार्थं क्रमोऽय विज्ञातव्यः । उत्तरचतुष्के द्वौ यथा – अ च वर्गौ प्रागुत्पन्नत्वाद् । द्वौ च इति द्वितीयचतुष्कमाह । तत्रान्त्यौ द्वौ वर्गौ 'प श' अधराधराविति मन्तव्यौ । अथवा द्वितीयवर्गौ द्वौ द्वा[व]धराविति। द्वौ अधरौ 'क ट' सञ्ज्ञौ। द्वौ अधराधरौ 'प स (श)' सञ्ज्ञौ। एवं वा नेयम् ॥३३॥

अनु(मु)मेवार्थं विशेपयन्नाह –

दो चेव उ [प० २४, पा० १]त्तरोत्तर, तेसिं दो उत्तराधर(रा) पढमे ।
अधरुत्तरा य दोण्णि य दोण्णि य अहराहरा विदिए ॥ ३४ ॥

तत्र उत्तरचतुष्के पूर्वोत्पन्नत्वात् प्रधानत्वाच्च 'अ च' एतौ उत्तरोत्तरौ । आभ्यामनन्तरपठि[त]त्वात् 'त य' एतौ उत्तराधरौ एव प्रथमचतुष्के। द्वितीये तु 'क ट' इत्येतौ अधरोत्तरौ। अधरचतुष्कत्वादधरौ प्रागुत्पन्नत्वादुत्तरौ। द्वौ अधराधरौ । 'प स[श]' सञ्ज्ञौ अधरचतुष्क(त्वा)दधरौ। 'क ट' वर्गयोः पश्चादुत्पन्नत्वाद् अधराधराविति । एव अष्टवर्गक्रमेण वर्गोत्तरमुक्तम् ॥ ३४ ॥

पचवर्गीयेत्(व्यमेतत्?–) ।

पढम-तइया उ वग्गा, पण्हस्स य उत्तरक्खरा होंति ।
बितिय-चउत्था अहरा, अ[हरा]हर हो[प० २४, पा० २]ति अणुणासी ॥३५॥

प्रथमवर्ग[ः] – 'क च ट त प य स (श)' इति । तृतीयो – 'ग ज ड द ब ल स' । एतौ वर्गौ उत्तरोत्तरौ, उत्तराविरयर्थः । द्वितीय[ः] – 'ख छ ठ थ फ र ष', चतुर्थः – 'घ झ ढ ध भ व ह', इत्येतौ वर्गौ अधरसञ्ज्ञौ। 'ङ ञ ण न म' इत्येपो(ष) वर्गः अधराधरसञ्ज्ञः। एवं वर्गोत्तरम् ॥३५॥

साम्प्रत गणनोत्तरम्, तदर्थं [गाथा]–

गणणाए छा [प० २५, पा० १] इल्ला, सरुत्तरा छस्सराधरा इयरे ।
विसमा वि उत्तरा वंजणेसु अहरा समा भणिया ॥ ३६ ॥

गणना-अनुक्रमो भण्यते। तत्र स्वराणामाद्याः षड् उत्तराः, पूर्वोत्पन्नत्वात् । 'अ आ इ ई उ ऊ'। पश्चादुत्पन्नत्वाद् अधरा 'ए ऐ ओ औ अं अः'। यद्वाऽन्यथा गणनोत्तर(र) स्वराणाम् 'अ इ उ ए ओ अं' द्वयोर्द्वयोः प्रागुत्प[प० २५, पा० २]न्नत्वादेते उत्तराः । पश्चादुत्पन्नत्वाद् 'आ ई ऊ ऐ औ अः' इत्येते अधरा । यत इदमाह –

"विसमा वि उत्तरा वजणेसु अहरा समा भणिया ।"

नि० गा० २

इदानीं गलनमेवाधीद्‍त्योऽच्यम् । विषमा[:]—प्रथम-तृतीय-पंचम-वर्गीया वर्णाः । द्वितीय चतुर्थाः समा इति । विषमवर्गीया उत्तराः, समवर्गीया अधरा इति । एवं गलनोत्तरम् ॥१६॥

हस्सा अयारसहिया, सव्वरादेसओऽधरा इयरे ।
क च ट त प य सा गुणओ य अकारो उत्तरो पढमो ॥ १७ ॥

गाथोद्देशेनोत्तरमेतत्—ह्रस्वाः स्वराः अकारसहिता इति । 'अकार इकार उकार एकार ओकार औ'इत्येते स्वरादेशाः[१ ११ ८ १]सिद्धाः । एतेषां मध्ये मध्ये अकारे अप्रधाना उत्तराः, तथाऽनुत्तर एव ज्ञातव्याः । उकारो पदस्युक्तं इति स उत्तर एव । सदर्प इति स अधरो पुनः उत्तरो भवति । यथा च अधरा पूर्वोक्ता अपि भेदोत्तरस्य पुनरुदिताः । आ ई ऊ ऐ औ अः, क च ट त प य इत्यन्यमूलोऽन्यथा उत्तर(रो) ज्ञातव्याः इत्युक्तो ॥ १७ ॥

क ग च ज ट ड त द प ब य ल, अट्ठमवग्गस्स पढम तइओ य ।
एते [य] उत्तरा वञ्जणेसु सेसा अ(ऽ)धरादेसे ॥ १८ ॥

'क ग च ज ट ड त द प ब य ल श सा' इत्येते प्रथम-तृतीयवर्गाक्षराः । अष्टवर्गस्याद्यः श(स)-कारः । तस्मात् तृतीयः [१ ११ ८ १] 'स'कारः । एते सर्वे उत्तरत्वेनादिष्टाः । शेषा अधरा इति । 'ख घ छ झ ठ ढ थ ध फ भ र व ष ह' इत्येते द्वितीय-चतुर्थवर्गाक्षराः अधरा आदिष्टाः ॥ १८ ॥

उत्तरसरसंजुत्ता, वग्गे लहु अक्खर(र)धरादेसे ।
अहरसरेसु य अहरा, हवंति ये उत्तरा लहुया ॥ १९ ॥

संयोगं प्रति स्वरसंयुक्त[:] । के ते उत्तरस्वराः ? उच्यन्ते—'अ इ उ ए ओ अं' [१ १ ८ १] एते । प्रथम-तृतीय-वर्गाक्षरसहिता ये अक्षराश्च उत्तराः । के ते ? उच्यन्ते—'क ग च ज ट ड त द प ब य ल श सा' इत्येते । अधरस्वरेषु स्वरस(स)हसंयुक्त उत्तरा एतादिक-(त्य)न्ते । पुन एव 'क ग च ज ट ड त द प ब य ल श सा' उत्तरास्तस्तैः 'आ ई ऊ ऐ औ अः' इत्येते(तैः) संयुक्त अधरा इत्यभिम(त्य)न्ते । एवमादेशोत्तरम् ॥ १९ ॥

दसेसु जे पढमा[१ १० ८ २]गा, पुव्वप(पुप्प)सा य उत्तरा सव्वे ।
अधरा य अप्पहाणा, पच्छुप(पच्छुप्प)ण्णा य जे सवा ॥ २० ॥

इत्यादिषु ये प्रधानतमाः पूर्वोत्तराम प्रथम-तृतीयवर्गाक्षराश्च उत्तराः प्रधाना ज्ञातव्याः । अधराश्च पश्चादुत्पन्नाः । के ते ? द्वितीय-चतुर्थवर्गाक्षराः । अप्रधाना ज्ञातव्या अधराश्चेति ॥२० ॥

णा(णे)मित्तिएण जे [१ १ ९ १] वा, उत्तरगुणीए अप्पणो गहिया ।
ते तस्स उत्तराणि उ, सेसा अहरीकया अहरा ॥ २१ ॥

नैमित्तिके ये निमित्तोत्तरफलरूपे ग्रहावलोकितरक्षणं वा क(का)रणिकं विचारबुद्धौ-हरणं विशेषान्तरस्य योपदर्शनार्थं आभिवर्णसंस्कारस्य निमित्तज्ञानवतो ग्राह्याणि चित्त बुद्धुल्लासः । अन्येषु अधरेषु[१ १८,८ १]सिद्धः अधरेषु उत्तरगुणिता पश्चोत्पन्ना अधरोऽपि धारणा(पि)रणी । यथा—गाढमाकृतिमत्त्वाद्युत्पत्तो योगवयोद्युत्तमिपूर्वोत्तरव्याप्तिषु तद्वद् विचारबुद्धिरस्तीति ॥ २१ ॥

॥ एवं चतुर्विधम(मु)त्तराधर समाप्तम् ॥

'अहवा इमं अट्ठविहं उत्तराधर होइ' सूत्रवचक(न)मेतत्। अथवाऽष्टप्रकारमेतदुत्तराधरं भवतीति वचनस्यार्थः।

अक्खरसरसंजोए, बलाबलविसेसओ अणति(हि)घाए।
तत्तो य उत्तरोत्तर, अहराअ(ऽ)हर अट्ठमं जाणे ॥ ४२ ॥

साम्प्रतं गाथार्थमु(र्थ उ)च्यते—स्वरोत्तर प्रथमं, अक्षरोत्तर द्वितीयं, सयोगोत्तर, बलाबलोत्तरं, विभागोत्तर, अनभि[प० २९,पा० १]हतोत्तर, [उत्तर,] उत्तरोत्तर चेति। एवमधरमपि अष्टप्रकारमेव सप्रतिपक्षत्वाद् वस्तुन(नः)स्वराधर, अक्षराधर, सयोगाधर, [बलाबलाधर, विभागाधर] अनभिहताधर, अधर, अधराधर चेति ॥ ४२ ॥

ह्रस्सस(स्स)रुत्तरं अक्खरुत्तरं उत्तराख(रक्ख)रा सव्वे।
ह्रस्सस(स्स)रसंजुत्ता, संजोएणुत्तरा लहुया ॥ ४३ ॥

अत्र स्वरोत्तरमुच्यते गाथाया अवयवेनाद्येन। ह्रस्वस्वरोत्तरम्। के ह्रस्वाः स्वराः? 'अ इ ए ओ' इत्येते चत्वारः। अक्खरुत्तर उत्तरक्खरा सव्वे। क्वे (के) च ते? प्रथम-तृतीयवर्गीया गृह्यन्ते। साम्प्रतं सयोगोत्तरमुच्यते—ह्रस्वस्वरसयुक्ता ला(ल)घवो वर्णाः 'क ग च ज ट ड त द प ब य ल श सा' इत्येते। यथा—[प० २९,पा० २] 'क कि के को, ग गि गे गो, च चि चे चो, ज जि जे जो' इत्यादि सयोगोत्तरम् ॥ ४३ ॥

इदानीं विभागोत्तर क्रममुल्लङ्घ्योच्यते, संयोगस्य प्रक्रान्तत्वात्—

गरुयक्खरा य सव्वे, उत्तरसरसंजुआ विभाएणं।
सो ठवइ उत्तरो खलु, होंति अ से तिण्णि या(आ)देसा ॥ ४४ ॥

गुर्वो(र्व)क्षरा उक्ता द्वितीय-चतुर्थवर्गीयाः। ते उत्तरस्वरसयुक्ताः,। यथा—'ख खि खे खो घ घि घे घो'। इत्यादिविभागेनोत्तराः। विभागो वदन अस(श) इत्यनर्थान्तरम्। यावता ह्रस्वस्वरसंयोगः। एतावता अंसे(शे)नोत्तरत्व भजन्तो मुख्यतश्चाधरा एव। तस्मात् स्वर आदेशत्रयविभा[प० ३०,पा० १]गेन भवति। लघुस्वराः, ह्रस्वाः, उत्तराश्चेति। शेषा दु(दी)र्घाः, गुरु(र)वः, अधराश्चेति। एव विभागोत्तरम् ॥ ४४ ॥

जो उत्तरेण अहरो, अभिहणंतो ठ(य) उत्तरो होइ।
अहरेण उत्तरो वा, बलाबलं उत्तरं एयं ॥ ४५ ॥

य उत्तरेणाधरः अभिहतः। उत्तरस्यावलीयस्त्वात्। तद्यथा—'ख क'। अत्र खकारः आलिंगितः, करा(का)रस्यालिंगितत्वात्। एका सख्या ह्रसति। ह्रसी(सि)तैकसंख्या(ख्य)श्च, खका-र(रः) कै(क)कारो भवति। प्रतिपक्षश्चोत्तरभावं खकारो(रः,) अबलत्वात्। [त]था अधरेणाभिहन्यमान उत्तरोत्तरो भवति। यथा—'ग घ'। अत्र घकारोऽभिधूमिक। गकारस्य संख्याद्व[प० ३०,पा० २]यमपनयन्ति(ति)। तृ(त्रि)सख्यत्वा[द्] गकारस्य। ह्रसिते च सख्याद्वये अबलत्वात्। गकारः ककारत्वमापन्न इति। एवमन्यत्रापि बलाबलिनोत्तर परमम्]॥ ४५ ॥

साम्प्रतमनभिघातोत्तरमुच्यते—

पढमस(स्स)रसंजुत्ता, अणभिहया जे हु ते अणभिहया ।
उत्तरमधरं वेंति य, सजोएणेव दो चरिमा ॥ ४६ ॥

प्रथमस्वरसंयुक्ताः । कः प्रथमस्वरः ? अकारः । तेन अकारेण संयुक्ताः । के ते ? अल्पाक्षराः अनभिहता भण्यन्ते । 'क ग च ज ट ड त द प ब य ल व स' इत्येते अनभिहता(त)संज्ञाः । शेषवर्णोत्तमभिहतसंज्ञा इति प्रतिपक्षत्वात्(द)भ्यन्ते । एतदनभिहतोत्तरं वर्ण[प ११ ब १]रेष चरिमेण बिन्दुना युक्तोऽक्षर उत्तरत्वं भवति । अधरेण विसर्जनीयेन युक्तोऽक्षरः अधरत्वं भवतीत्यर्थः । एवं षष्ठो भेदस्तृतोऽयम् । उत्तरा उक्ता । उत्तरोत्तराधरोक्ता । उत्तरप्रतिपक्षेणाधरा [अ]युक्ता । उत्तरोत्तरप्रतिपक्षेणाधराधराः योज्याः । इत्येवं अष्टप्रकारमुत्तराधरव्याख्यानम् ॥ ४६ ॥

एवं सउत्तरादिसु, पलावलं लक्खणो पलोएउ ।
चिन्तादीए भावे, जीवाइ स(वि)भिणिहिसे भइम ॥ ४७ ॥

इत्यनयोः इत्युत्तरं(रा) लक्षणं सर्वतो विशेषेण चिन्ता-लाभ-मुष्टि-जीव-धातु-मूलयोनिं वा विशेषेण यथाविभक्तेनाक्षरे(र)णामाभिधेयमभिमान् ॥ ४७ ॥

जीवं जाणसु वोसुत्तरेसु [प ११ ब १] अहरेसु दोसु मण धाओ(उ) ।
अहरुत्तरेसु मूलं, उत्तरमधरे तहा धाउ ॥ ४८ ॥

जीवं जानीहि । प्रश्नाक्षराणामादौ पतिते उत्तराक्षरद्वये जीवं प्रश्नाक्षराणां आदौ पतिते अधराक्षरद्वये धातुं, प्रश्नाक्षराणां आदौ पतिते अधरे द्वितीये चोत्तरेऽनन्तरं पतिते मूलम् गच्छ । [प १२ब १] प्रश्नाक्षराणा[मा]दौ यदा उत्तरे द्वयधरे पतितेऽनन्तरं धा(धा)तुः । तथाऽपि धातुमेवागच्छ ॥ ४८ ॥

॥ इत्येव उत्तराधरं प्रकरणं समाप्तम् ॥

दुविहो खलु अभिघाओ, सद्दगओ चेव अक्खरा(र)गओ य ।
सद्दगओ तिविगप्पो, मंदो मज्झो य तिव्वो य ॥ ४९ ॥

द्विविधोऽभिघातः शब्दगतोऽक्षरगतश्च । तत्र श[प १२ब १]ब्दगतो अभिघातस्तावत् अनेकप्रकारः षड्ज-ऋ(ऋ)षभ-भेरी-कुम्भपटह-मुरज-आकाशभिघातादिशब्दः । स त्रि(त्रि)विकल्पः (म)न्दो मध्यमो महान्श्चेति(तीव्रश्चेति) । अक्षरा(र) अभिघातामिभूमितदृष्टश्चक्षुषः । अक्ष[र]गतमभिघातमुपरिष्टाद् वक्ष्यति ॥ ४९ ॥

एक्केक्को पुण दुविहो, होइ पसत्थो य अप्पसत्थो य ।
[अ°]पसत्थो मंदावी, कुणइ आलिंगियादीणि ॥ ५० ॥

स शब्दो द्विविधः—प्रशस्त(स्तोऽ)प्रशस्तश्च । वीणा-वेणु-शं(शं)ख-भेरी-पटहादिगतः प्रशस्तः । कृष्णपक्ष[व]-माण्डलिमङ्ग-रासभादिशब्दस्त्वप्रशस्तः । सः शब्दोऽप्रशस्त आलिङ्गिता प्रश-

स्रो वाऽप्रशस्तो वेति। मध्यमो यः शब्दो [प० ३३, पा० १]ऽभिधूमितसंज्ञः प्रशस्तः, अप्रशस्तो वा। एव प्रशस्तः, अप्रशस्तो वा यः शब्दस्तीव्रः स दग्धसंज्ञः। प्रशस्तो यः शब्दोऽल्पः सोऽल्पफलं ददाति, स्थिरं च करोति। प्रशस्तो यः शब्दो मध्यमः स मध्यमफलं ददाति, मध्यमं स्थैर्यं करोति। प्रशस्तो यः शब्दस्तीव्रः स महत् फलं करोति, स्थैर्यं च तस्याल्पकालमिति। अप्रशस्तः यः शब्दोऽल्पः सोऽल्पमान्द्यं करोति, स्थैर्यं च तस्य मान्द्यं करोति। अप्रशस्तो यः शब्दो मध्यमः स मध्यममान्द्य करोति, मध्यमं च स्थैर्यं मान्द्यस्य करोति। अप्रशस्तो यः शब्दः तीव्रः स महामान्द्यं करोति, अवस्थान च त[प० ३३, पा० २]स्य मान्द्यस्याल्पकालमित्येतदपि शुभाशुभमल्प-मध्यम-महत्त्वेन द्र[ष्ट]व्यम्। एवं शब्दाभिघातः ॥ ५० ॥

अक्षराभिघातार्थः –

बि-चउत्थ-पंचमाणं, वग्गाणं अक्खरा अभिहणंति।
एक्कुत्तरिया य सरा, अणभिहया सेसया वग्गा ॥ ५१ ॥

द्वितीय-चतुर्थ-पञ्चमवर्गैः प्रथम-तृतीयौ वर्गावभिहन्ये[प० ३४, पा० १]ते। एकान्तरितास्(श्च) स्वरा[ः] के भण्यन्ते? इत्यत्रोच्यते – यद्यप्येकान्तरिता बहवः, तथापि 'आ ई ऊ' कारश्च एते त्रय एकान्तरिता[ः] प्रथम-तृतीयौ वर्गा[व]भिघ्नन्ति। प्रथम-तृतीयवर्गौ ह्रस्वस्वराश्च चत्वार एते परस्पर नाभिघ्नन्ति ॥ ५१ ॥

अणभिहया अनि(ण्याभि)हया वा, पिछिज्जंता उ आभिघा[प० ३४, पा० २]तीहिं।
आलिंगियाभिधूमितदढं(ड्ढं) व लहंति ते नामं ॥ ५२ ॥

अनभिहता वर्गा उक्ता अभिहताश्च एते अनभिहता वा के ते प्रश्नाक्षरा[ः]? तेषा प्रश्नाक्षराणा स्थापिताना किमपि घातोऽस्ति नास्ति च इति चिन्त्यम्। यदा प्रश्नाक्षराणा परस्पराभिघात उच्यते तदा †प्रथमाक्षरद्वितीयाक्षरत्रि(स्तृ)तीयाक्षरमभिहन्ति। तृतीयाक्षर चतुर्थाक्षरं अभिहन्ति। एवं चतुर्थाक्षर पञ्चमाक्षर, पञ्चम षष्ठः, षष्ठं सप्तमः, सप्तमो(?)ऽभिहन्त्यभिघाते सति। यो यस्यानन्तर स तमिति। अभिघातस्यालिङ्गिताभि[धूमि]तदग्धलक्षणमुपरि[प० ३५, पा० १]ष्टाद् विस्तरेण व्याख्यास्यति। यदा प्रश्नाक्षराः सर्वे परस्परमभिहताः, तदा अप्रधाना निफ(ष्फ)लास्(श्च) भवन्तीति ॥ ५२ ॥

प्राक् तावत् स्वराभिघाता उच्यन्ते –

अणवि(भि)ह[य] अभिहया वा, अंतरदीहस(स्स)रेहि संजुत्ता।
अभिधूम(मि)यंति लहुया, दहंति गरुया वि ते चेव ॥ ५३ ॥

अनभिहता अभिहता वा ये प्रश्नाक्षराः। अथवा प्रथम-तृतीयौ वर्गावनभिहतसंज्ञौ। शेषास्त्वभिहतसंज्ञाः। एते अन्तरदीर्घा(र्घै)स्वरयुक्ताः। के ते अन्तरदीर्घस्वराः? आकारः, ईकारः, ऊकारश्चेति एते त्रयः। एतैरन्तरदीर्घस्वरैः सयुक्ता अभिधूम्यन्ते [प० ३५, पा० २] अग्रतो याम(न)न्तरमवस्थितैः। के ते लघ्वक्षराः? 'क ग च ज ट ड त द प ब य ल श स' इत्येते चतुर्दश। आकारेण ईकारेण ऊकारेण च सयुक्ता अग्रतो वाऽनन्तरमवस्थितैर्दह्यन्ते गुर्वा(र्व)-

†–† एतद्द्विदण्डान्तर्गत पाठो अप्रायो दृश्यते।

स्वराः । के ते गुर्वा(र्वी)स्वराः ? 'ख छ ठ थ फ र षा' इत्येते सप्त । आकारेण ईकारेण ऊकारेण च [प १६,पं १] संयुक्ता भवन्ति आऽअन्तरसहितैर्दह्यते(न्ते) परेण । गुर्वा(र्वी)द्व(ह)रा(ः) के ते ? 'घ झ ढ ध भ ल ह' इत्येते सप्त ॥ ५३ ॥

आलिंगियन्ति ह्रस्सस(स्स)रा हु दीहस्सरा रि(इ)ह दहंति ।

पम्हस्सरा उ सव्वे, संजुत्ता आणुपुव्वीए ॥ ५४ ॥

आलिङ्ग्यन्ते ह्रस्वस्वराः । के ते ह्रस्वस्वराः 'अ इ उ ए' ते चत्वारः । के ते आलिङ्ग्यस्ते(न्ते) 'क च ट त [प २१ पं २] क र पाः ग ज ड द ब म य हा' प्रोक्ताः द्वितीय-चतुर्थवर्णस्वराः सप्त । 'घ झ ढ(ठ) ध भ य व ह'चतुर्थवर्णोऽक्षरा दह्यन्ते चतुर्भिः स्वरैः । के ते चत्वारः 'ओ औ अं अः' । एवं संयुक्ताः आनुपूर्व्या आलिङ्ग्यन्ते, अभिधूम्यन्ते, दह्यन्ते च ॥ ५४ ॥

अमुमेवार्थं गाथान्तरेण प्रतिपादयन्नाह—

अंतरदीहा अभिधूमियत्ति आलिंग(गि)यत्ति जे ह्रस्सा ।

दिट्ठ(दिट्ठ)तो चरिमसरा, अ(स)हावदीहाणुणासीया ॥ ५५ ॥

अन्तरदीर्घ(र्घा) यत्र 'आ ई ऊ' एतेऽभिधूमितसंज्ञा[ः] । ह्रस्वा यत्र 'अ इ उ ए' एते आलिङ्गितसंज्ञाः । [ऐ औ] द्वौ स्वरौ चरिमसंज्ञौ वा अ(आ)येषो दो दग्धाः । [प १६,पं १] स्वभावदीर्घाः 'ऊ ऐ औ' अनुनासिकाः 'ङ ञ ण न म माः' इत्येते ॥ ५५ ॥

अपरस्त(स्मि)न्न मिश्रमात्मगाथा(था)या व्याख्यायते—

आलिंगिया य आलिंगियंति अभिधूमिया य धूमेंति ।

दड्ढा(ड्ढा) य दहंति सरा, तेसिं जुत्तं च वरिपं(मे)च ॥ ५६ ॥

आलिंगितसंज्ञाः ये ते 'अ इ ए ओ' एतैश्चतुर्भिः स्वरैः ये आलिङ्ग्यन्ते । द्वितीय-चतुर्थव[र्गी]स्वराः यत्र यत्र । अभिधूमितसंज्ञाश्च 'आ ई ऊ' एतैरभिधूम्यन्ते । प्रथम-तृतीयवर्णोऽक्षराः स्तेऽयुक्ताः । एवं दग्धसंज्ञा 'उ ऊ अं अः' एते प्रथम-तृतीयवर्णं दहन्ति । पञ्चाद्युक्तम् । 'ओ औ अं अः' एते चत्वारस्तैः स्वरैः संयुक्ताक्षरा[प १७ पं १] प्रथम-तृतीय-चतुर्थवर्णोऽक्षरा दहन्ति । इत्येतदुक्तमपि पुनरुक्तम् । 'ऐ औ' एतौ द्वौ स्वरौ प्रथम-तृतीय-पञ्चमवर्णौ दहन्ति । इत्येतदनुक्तम् । एतैर्दग्धस्वरैर्येः संयुक्तोऽक्षरस्तं दहन्ति पूर्वोत्तरं चाभ्यन्तरमिति संयोगभावे सति ॥ ५६ ॥

एवं स्वरविभाग उक्तः । इदानीं वर्णविभागः—

बीओ य पढम-तइयं, पढम-तइया य चायओ(जे य दु?) चउत्थं ।

आलिंगियंति वग्गा, चउत्थ पुण पंचम वग्गं ॥ ५७ ॥ [प १ पं० १]

द्वितीयो वर्गः प्रथमवर्गं तृतीयं चालिङ्गयति । तथा प्रथमवर्णस्तृतीयवर्णेन द्वितीयवर्णमालिङ्गयता(ति) । तथा प्रथमवर्णस्तृतीयवर्णश्चतुर्थवर्णमालिङ्गयति । उक्तम्—प्रथम-तृतीयौ द्वौ द्वितीयमपचतुर्थं [इ]ति । चतुर्थवर्णः पञ्चममालिङ्गयति । तत्र प्रथमवर्णः पृथिव्यात्मकः । द्वितीयो वाया(प्या)त्मकः । तृतीय उदकात्मकः । चतुर्थ आकाशा(शा)त्मकः । पञ्चमः वाय्वात्मकः । इत्येवं पञ्चमह[प १ पं १]भूतात्मकं जानी[हि] ॥ ५७ ॥

अभिधूमेइ चउत्थो, आइमवग्गे उ तिण्णि नियमेणं ।
पंचम-चउत्थवग्गो, दोण्णि य अभिधूमये त्रितिओ ॥ ५८ ॥

अभिधूमयति चतुर्थो वर्गः प्रथमवर्ग(र्गं) तृ(द्वि)तीयवर्गं तृयतीवर्गं च । द्वितीयवर्गश्चतुर्थवर्गं पञ्चमवर्गश्चे(र्गं चे)ति ॥ ५८ ॥

आइल्ला चत्तारि वि, डज्झंति पंचमेण वग्गेण ।
पंचमओ पुण डज्झइ, पढम-तइज्जेसु दोसु पि ॥ ५९ ॥

प्रथम-द्वितीय-[तृतीय]-चतुर्थवर्गा दह्यन्ते पञ्चमवर्गेण अग्न्यात्मकत्वात् । पञ्चमवर्गस्तु दह्यते विनास्य(श्य)ते प्रथम-तृतीयो(यैः) पृथिव्यो(व्यु)दकात्मकैः ॥ ५९ ॥

जे जे समाभिलावा, अण्णो[प० ३९, पा० १]ण्णं ते उ णं अभिहणंवे(ते)ति ।
जह क ग च ज मादीया, दो दो लहुआ सुआ अण्णा ॥ ६० ॥

जे जे(ये ये) समानसी(शी)ला लघवश्च मात्येते(?) लघवः अन्योन्याना(न्ना)भिघ्नन्ति । के ते समानसी(शी)लाः, ते उच्यन्ते–'क ग च ज ट ड त द प ब य ल स (श) सा' इत्येते । प्रथमवर्गतृ(स्तृ)तीयवर्गश्च लघुसञ्ज्ञौ । अनयोरासन्नौ(न्नौ) द्वितीय-चतुर्थवर्गौ गुरुसञ्ज्ञौ भवतः । परस्पराभिघातकौ चेति ॥ ६० ॥

अभिहणमाणे दिट्ठो(ट्ठे?), जोणीसंठाणवण्णमाईणि ।
अभिहणमाणस्स ऊ(?) भवे, ण जो उ अभिहण्णए तस्स ॥ ६१ ॥

अभिहन्यमाने दृष्टे । कोऽभिहण्यन्ते(न्यते) । दो(यो)भि[प० ३९, पा० २]हन्तीत्युक्तमपि पुनरुच्यते–पूर्वं(र्वे)पूर्वाक्षरोऽग्रिमेणात्क(क्ष)रेण यादृशेन यादृश इति । पूर्वोक्तं योऽभिहन्ति तस्याभियंतु(हन्तु॰) योनि-स्थान-वर्णप्रमाणादीनि वक्तव्यानीति । कस्मात्कारणादित्युच्यते–येन सर्वोऽभिहन्ति वलीयानीति (वलवान् इति?) ॥ ६१ ॥

परवग्गेण उ वग्गो, जो जेण अभिहण्णए उ तो तस्स ।
अभिघ(घा)यं जाणेज्जा, राजादिसंथ(घ)त्रणा(ण्णा)णं ॥ ६२ ॥

परवर्गेण वर्गो यो येनाभिहन्यत इति । परवर्गस्य इत्यक्षरस्य सञ्ज्ञा । एतत्तु प्र(पृ)थक्(क्)व सा(शा)न् । पराक्षरेण(?) योक्षरोऽभिहन्यन्ते(ते) तस्याभिहन्य[प० ४०, पा० १]मानस्य पराजओ(यो) वक्तव्यः । अभिहर्त्तु(न्तु)र्जयो वक्तव्यः । एवं ब्राह्मणादिवर्णाना राजन्यस्य वा युद्धे विवादे वा जय(यः)पराजयो वाच्य इति । आलिङ्ग(ङ्गि)ते भागहानिः । अभिधूमित-अभिघाते द्वे हानिः क्षयो वा । दग्धे निशे(ग्शे)पतश्चक्षयो मृत्युर्वा ॥ ६२ ॥

आलिंगियंमि जीवं, मूलं अभिधूमियंमि पण्हंमि ।
दड्ढं(ड्ढं)मि भणसु धाउं, एत्तो उड्ढं जहा वोच्छं ॥ ६३ ॥

प्रशस्ताप्रशस्ताश्च ये शब्दा[ः] पटहकुड्यपतनादिगतास्ते पूर्वोक्ता [प० ४०, पा० २]आलिंगिताभिधूमितदग्धलक्षणाः । तत्रालिङ्गिते शब्दे [जीव आदेश्यः । अभिधूमिते शब्दे] मूलमादेश्यम् । दग्धे शब्दे धातुरादेस्यः(श्य.) । तस्मात् पूर्वे(ऊर्द्ध्वं) 'यथे'ति वक्ष्यमाणकं प्रश्नम् ॥६३॥

आलिंगियंमि कलहो, मंदं अभिधूमियमि पण्हंमि ।
दड्ढंमि भणसु मरणं, एत्तो उड्ढं जहा वोच्छं ॥ १४ ॥

अभिय(अ)पि प्रशस्ताप्रशस्तक्षणत्व पदानभरहस्तो व्यभिचारिवितत्ता(लो)परिहृम् ॥ १४ ॥

॥ अभिघातप्रकरणं समाप्तम् ॥

वग्गाण जइ पढमा, णिरंतर वा तिण्हि पण्हमाइए ।
तो सुण्णं जाणेज्जा, [ण]वि किंचि वि चिंतिय तपे(त्थ) ॥ १५ ॥

वर्गाणां यदि [प ४१ प १] प्रथमा इति प्रथमवर्णेन स(त)स्था प्रथमः अकारः, 'च' वर्गस्य च प्रथमः ककारः 'च' वर्गस्य च प्रथमच(श)कारः । पाठे अपि यदा निरन्तरं प्रश्नादौ दृश्यन्ते तदा सु(शू)न्यं जानीयात् । न किञ्चिदपि चिन्तितं वदेदिति । तथा मध्ये किमप्यम् ॥१५॥

अभिहयधवितुविसग्गे, चिंता मुट्ठी य सुसिया होइ ।
वग्गोत्थबहुलवण्णो, तत्थ ण कज्जं मुणेयव्वा(वं) ॥ १६ ॥

य(प)त्र प्रश्नाक्षरा आलम्बनेन बिन्दुविसर्गेयमितावा । तत्र चिन्तायां मुष्टौ च (शू)न्यम् । तथा पञ्चवर्गीया नैरन्तर्येण बहवो वर्णोत्थाऽपि न कार्यं सु(शू)न्यमित्यर्थः ॥ १६ ॥

मीसस्स [प ४१ प २] अत्थि चिंता, आधाराधेयमिस्सय[ति]दुविहा ।
धम्माधम्मागासा आहारा तिण्णि विन्नेया ॥ १७ ॥

प्रश्नाक्षराणां मध्ये 'अ क चा' द्याऽन्तर्गे[च] सहिता दृश(श्य)न्ते तदाऽपि चिन्ता । सा च द्विविधा आधारविषया आधेयविषया वा । तमर्थ[प ४२ प १]विषयाऽपि संभवा त(त्रि)विध भवतीति । आधाराः [ज]ग(य)न्ति आधि(धे)या माता । अथवा-आधारमेदेन द्विविधा चिन्ता । धातु-योग्ये कल्याणम् । धातुत्र(त्रि)विधो धाम्या अधाम्या आकाशमिति—एवं केचिद् व्याख्या-नयन्ति । वयेतत्सूरिगाथया अ[प ४२ प १]ऽ विश्यते । तदार्थमथवा व्याख्यायते—आधारस्त्र(त्रि)विधः—धर्माधर्माकाशलक्षणो [ऽ]मूर्तः । तत्र धर्मोधर्मौ लोकव्यापिनौ । आकाशस्तु लोकालोक-व्यापी । तत्र गतिलक्षणो धर्मोऽस्तिकायो गतिमतां जीवानां पुंग(द्ग)लानां च गत्युपग्रहे वर्तते । स्थितिलक्षणा(ण) अधर्मास्तिकायः स्थितिमतां स्थितिहेतुः । अवगा(गा)हलक्षणमाकाशं, अव-गाहिनामवगा[ह]हेतुरिति । एते त्रयोऽपि अमूर्तो जीव-मूल-धातूनां आधारं, आधेया जीवधातुमूला इति [प ४२ प १] ॥ १७ ॥

एतंव(च्चेव) पराह—

जीव धाउ मूलं, आधेयं तत्थ पढमओ जीवो ।
न(अ)इवंसइ सो दुविहो, जीवावयवो य जीवो वा ॥ १८ ॥

जीव[ः], प्रथम[ः] धातुपदार्थो द्वितीय[ः], मूलपदार्थस्तृतीयः । एवं त(त्रि)भिः पदार्थैस्त्या(र्था)र्थं प्रगमिति । त्रिविधैव योनिर्भवति । तत्र तावत् प्रथमो जीवपदार्थः । स च द्विविधो दृश्यो जीवो [जी]वावयवभेदेति ॥ १८ ॥

जीवे दिट्ठे जीवं, जीवावयवं च तत्थ नायव्वं ।
पुणरवि उत्तरसहिए, पण्हे जीवं हवे नियमा ॥ ६९ ॥

जीवाक्षरेष्वनभिहतेषु [प० ४३, पा० २] जीव इत्यादेरयम् । तेष्वेवाभिहतेषु जीवावयवो वक्तव्यः । पुनरप्युत्तरस्वरैरक्षरैर्वा बहुले प्रश्ने जीवेनैव तिसस(निस्सश)यं भवितव्यम् ॥ ६९ ॥

अहरसहिए उ पयो(ण्हे), जीवं वावयवं नु(? तु) मुणिज्जासु ।
जीवे लद्धंमि पुणो, दुवय-अपदाहि(इ)पभेदा [य] ॥ ७० ॥

अधराहुतो (अधरसहिते?) प्रश्ने जीवावयव(वं) जानीहि । जीवयोनो लब्धायां द्विपद-चतुष्पदापदपादसङ्कुला भेदा वक्ष्यमाणाश्चिन्त्याः ॥ ७० ॥

लोमाणि तया रुहिरं, मेदो मंस-ट्ठि-मज्ज-सुक्काइ ।
जीवावयवा [य] पदे, जीवा सिद्धा असिद्धा य ॥ ७१ ॥

रोमाणि त्वग् रुधिर मांस मेदोऽस्थि[प० ४४, पा० १]मज्जाशुक्राम्य(ण्य)ष्टावेति जीवावयवाः । जीवाः सिद्धा असिद्धाश्च द्विविधा भण्यन्ते ॥ ७१ ॥

सिद्धा एगवियप्पा, [अ]सिद्ध संसारिणो चउवियप्पा ।
दुपया चउप्पयावि य, अपया पयसंकुला चेव ॥ ७२ ॥

तत्र सिद्धा एकभेदाः ससारविनिर्मुक्ताः । असिद्धाः ससारिणः । ते चतु [र्विकल्पाः] । चतुरो भेदाश्च(ना)ह–देवगतिः, मनुष्यगतिः, तिर्यग्गतिः, नारकगतिश्चेति । द्विपद-चतुष्पद-अपदाः[पद]सङ्कुलाश्चेत्यमरचक्रमेभेधा (श्चेत्यपरचतुर्भेदाः) ॥ ७२ ॥

दुपया माणुस्स(स)देवा, पक्खी तह नारया मुणेयव्वा ।
मणुया हु चउवियप्पा, णायव्वा पण्हइत्तेहि ॥ ७३ ॥

द्विपदा मानुष(षाः) देवाः [प० ४४, पा० २] पक्षिणो नारकाश्चेति वक्तव्याः । मनुजाश्चतुर्भेदाः ॥ ७३ ॥

तेषामन्यगाथया चतुरो भेदा[न्] वक्ष्यति–

पढमो ह बंभणाणं, बीओ वग्गो य हवइ वेसाणं ।
तइओ [य] खत्तियाणं, सेसा दो होंति सुद्दाणं ॥ ७४ ॥

प्रथमो वर्ग. 'क च ट त प य सा (शा)' इति ब्राह्मणाः(ना) ज्ञेयाः(य॰) । द्वितीयो वर्गः 'ख छ ठ थ फ र पा' इति भवति वेस्सा(वैश्या)नाम् । तृतीयवर्गा(र्गः) 'ग ज ड द ब ल सा' क्षत्रिया-णाम् । चतुर्थो वर्ग 'घ झ ढ ध भ व हा' [प० ४५, पा० १] शूद्राणाम् । 'ङ ञ ण न मा' पञ्चमो वर्ग[ः] शं(स)करजातीनाम् ॥ ७४ ॥

दुविहा एते णेया, इत्थी पुरिसा पुणो वि ते विव(तिवि)हा ।
बाला तरुणा थेरा, उत्तम-मज्झा-धमा तिविहा ॥ ७५ ॥

ये एते चतुर्विंशा व्यञ्जनाख्य वर्णाः तेष्वेव पूर्वोक्तवर्गेषु प्रथमो वर्गस्तृतीयवर्गो(र्गौ)श्च पुमान् ज्ञेयः । द्वितीय-चतुर्थवर्गौ स्त्रीसंज्ञौ । पञ्चमो वर्गो नपुंसकसंज्ञः । तत्र पुमांस्त्रि(स्त्रि)विधो बाल-तरुण-स्थविर इति । योषि[त् ७५,प १]दपि त्रिविधा बाला तरुणी स्थविरा चेति । नपुंसक-मिति(मपि) त्रिविधमेव बालं तरुणं स्थविरं चेति । स्त्री-पुं-[नपुं]सकान्येतानि प्रत्येकं त्रिविधान्युत्तम मध्यमाधमभेदेन द्रष्टव्यानि । विशेषमेषां गाह(स्य)मानस्थगाथया दर्शयिष्यति ॥ ७५ ॥

तह चेय कम्मम्मा(भू)मा, अकम्मभूमा य अंतरदी(दी)वा ।

एदे कमेण सवे, सणामणिदे(दि)सउ(ओ) जाण ॥ ७६ ॥

तथा चैव(वं) कर्मभूमयः । ते च प्रथमवर्गाक्षराः, अन्तरद्वीपैकारैर्युक्ताः । कर्मभूमयो मनुष्या भवन्ति । अन्तरद्वीपैकाराश्च 'आ ई ऊ' । [प ७६ प १]कोऽयम[र्थः] तस्य अपि तृतीयाः पुनश्च-र्थाः । तृतीयवर्गाक्षराः अन्तरद्वीपैकारैर्युक्ता अकर्मभूमयो भवन्ति देवाः । यथा कर्मभूमिजानां अकर्मभूमिजानां योनि[:] समान[:] येषां च वर्णाकृतिः समानमिति वक्ष्यामि । अन्तरद्वी(द्वी)पानां षट्पञ्चाश(श)तं प्रत्येकमपीनां भवतो नेकधा(ऽनेकधा) । तेषां च स्वनामनिर्देशा[त्] संविज्ञान कर्तव्या(व्य)मिति ॥ ७६ ॥

॥ जीवसमा[स]प्रकरणं समाप्तम् ॥

धाउस्सरा सहस्सा, कणादिवग्गाणुरासिया दुपए ।

बीओ दसमो य सरो, चउप्पए साइवग्गो य ॥ ७७ ॥

प्रश्ने प्रथम-[प ७६ प १]तृतीय-पंचमवर्णाक्षराश्रित(ताश्रि)ते प्रथम-तृतीय-पञ्चमवर्गाश्च-येषामेव एकस्मिन् अकारेण धातुस्वरेण द्वयेन युक्तो(क्ताः) तेषामेवान्यतमस्याऽन्यतो वाऽन्यतरस-वलितेन द्विपदजीवचिन्ता विज्ञेया । प्रश्ने द्वितीयवर्गाक्षरयुक्ते द्वितीय आकारे दशम औकारे(रे)वयोरन्यतमेन द्वितीयवर्णाक्षरेषु युक्तेषु प्रश्नो वा चतुष्पदचिन्ता विज्ञातव्या ॥७७॥

अपयाण भ झ ढ खलु, पयाकुलयाण(त्ताण च) घ भ च हा चउरो ।

चउरक्कमवारसमा, [प ७७ प १] सरा य कोण्हमि सामण्णा ॥ ७८ ॥

भ झ ढ युक्ते प्रश्ने ईकारे ऐकारे अकारेण च सविसर्गेण अमित्त(त्रि)भिः स्त्रीपुंकेषु । एषां चान्यतमाक्षरस्यान्यतमस्यान्यतमस्यापतयोऽन्यतोऽन्यतरस्यवलिते अपदा ज्ञेयाः । घ भ च हा अक्षराः चतुरेव स्वरैस्त्रिभिर्युक्ताः पूर्वोक्ता(क्त)न्यायेन पादसंकुलाः मानिनो ज्ञेया इति ॥ ७८ ॥

जइ पढम-तइय-पञ्चम-वग्गो पण्हक्खराइ दीसंति ।

तो दुपय-जीवचिंता, चउप्पयाण पि [वि]चउत्थे ॥ ७९ ॥

यदा[प ७७,प २][द्]पि परिज्ञातव्या तदापि त्रिविधितशेषमपि प्रश्नोच्यते-प्रथमवर्गेण तृतीयवर्गेण पञ्चमवर्गेण च सम्बन्धिनो यदा प्रश्नाक्षरा धातुस्वेन दृश्यन्ते तदा द्विपदजीव चिन्ता ज्ञातव्या । द्विचतुर्थवर्गाक्षराणां धातुत्वे चतुष्पदा ज्ञेया[:] ॥ ७९ ॥

भवणवइ-वाणवंतर-जोइस-वेमाणिया तहा देवा ।
तेसि दस अट्ठ पंच य, व(बा)रस णव पंच य वियप्पा ॥ ८० ॥

दश प्रकारा भवनवासिनः, तद्यथा – असुर-नाग-विद्युत्-सुवर्णा-ऽग्नि-वात-स्तनितो-दधि-द्वीप-दिक्कुमाराः । अष्ट प्रकारा व्यन्तराः – किंनर-किंपुरुष-[प० ४८, पा० १]महोरगा(ग)-गान्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः । पञ्च भेदा ज्योतिष्काः – सूर्य-चन्द्रमसो-ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णतारकाश्च । वैमानिका अनेकप्रकाराः – सौधर्मेशान-सनत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मलोक-लान्तक-महाशुक्र-सहस्रार-आणत-प्राणत-आरण-अच्युताद्या द्वादशकल्पोपपन्नकाः । अपरे नवग्रैवेयकाः–अधोमध्यमोपरि-विभागस्थाः । तथाऽनुत्तरविमानवासिनः पञ्चप्रकाराः – विजय-वैजयन्त-जयन्ता-पराजिताः सर्वार्थ-सिद्धसंज्ञाः । एते स्वभावनिर्देशतो विज्ञातव्याः ॥ ८० ॥

सिद्धाण आदिवग्गो, देवाणं होंति तिण्णि वग्गाओ(उ) ।
दो चेव मानुषा(णुसा)णं, [प० ४८, पा० २] सेसा तिरियास(ण) वग्गा हु ॥८१॥

लोकाग्रे व्यवस्थिताः सिद्धा अशेषविमुक्ताश्च अकारबहुले प्रश्ने । [क च ट बहुले प्रश्ने ?] वैमानिका देवा ज्ञेया. । त प बहुले प्रश्ने मनुष्या ज्ञातव्याः । य श बहुले प्रश्ने उत्कृष्टाति(स्ति)र्य-ग्गतयो ज्ञेयाः ॥ ८१ ॥

दुपयक्खरेसु दिट्ठे, सव्वे दुपयक्खरा मणुस्साणं ।
जे पुण चउप्पयाणं, ते नियमा होंति देवाणं ॥ ८२ ॥

द्विपदाक्षराः । के ते ? प्रथम-तृतीय-पञ्चमवर्गाक्षरा· । एतद्बहुले प्रश्ने मनुष्या द्रष्टव्याः । अकर्मभूमिकान्तरद्वीपकाश्च । चतुर्थ[प० ४९, पा० १]वर्त्ता(र्गा ?)याश्चातुष्पदाक्षराः, ते(तैः ?) उत्तरस्वरयुक्तैर्भवनपतिव्यन्तरा ज्ञेया इति ॥ ८२ ॥

अपदाणं जो गमओ, सो चेव य होंति नारयाणं पि ।
बहुपायाणं तइओ, सर(सा)वयवो होइ पक्खीणं ॥ ८३ ॥

अपदाक्षरा घ झ ढ पूर्वोक्ताः । द्विपद-योनौ लब्धाया ध न ब हा नामत्यवसोय(?)त्वाभि-व्यञ्जको भवति । तदा पक्षमे(क्षिणो?) सत्त्वा भवन्ति ॥ ८३ ॥

मणुअक्खरेसु मणुआ, इत्थीए सेसएसु नायव्वा ।
हस्स[स्स]रा य णिद्धा, सेसा ल(लु)क्खा सरा सव्वे ॥ ८४ ॥

मनुष्याक्षरा. प्रागुक्ताः । विशेषोप[प० ४९, पा० २]दर्शनार्थं पुनरुपन्यासः । प्रश्ने मनु-जाक्षरबहुले मनुजा ज्ञेयाः । के ते मनुजाक्षरा· ? । प्रथम-तृतीयवर्गप्रतिबद्धाः । द्वितीयवर्गाक्षर-बहुले प्रश्ने स्त्री ज्ञातव्या । ह्रस्वस्वरा·, के ते ? अ इ उ ए एते पञ्च(?)स्निग्धाः । एतद्बहुले प्रश्ने पुरुषा [आ]देश्या. । शेषा· दीर्घा. सप्त स्वराः । एतद्बहुले प्रश्ने स्त्रिया(यो) वक्तव्या. ॥ ८४ ॥

खरघ(घ ?) मादिणो य वग्गा, पंच य अणुणासिया भवे लुक्खा ।
णिद्धा कगादिवग्गा, तत्थ य कज्जं तु सयणगया(? यं) ॥ ८५ ॥

द्वितीय-चतुर्थ-पञ्चम-वर्गे एव यतो वर्गो रुक्षा(क्षाः) । प्रथम-तृतीयवर्गौ[स्निग्धौ] । स्निग्धवर्गाक्षरबहुले प्रश्ने स्व-जनसम्बन्धे कृते कार्यं ज्ञातव्यम् । रुक्षाक्षरबहुले प्रश्ने पर-जनसम्बन्धे कृतं कार्यं ज्ञातव्यम् ॥ ८५ ॥ एतदेवाह—

परजणकयं [प १ पं १] च कज्जं, मुणेह सव्वं लुक्खएसु(क्खरेसु) पि(?) ।

मिस्से पमयासहियं, कज्ज तह [पुत्त]महकज्ज ॥ ८६ ॥

रुक्षाक्षरबहुले प्रश्ने पर-जनकृतं कार्यम् । स्निग्धरुक्षाक्षरबहु[ले] प्रश्ने प्रमदासंयोगार्थं कार्यं पुत्रकार्यं च ज्ञातव्यम् ॥ ८६ ॥

पढमक्खरेसु बाला, मज्झेसु य जोव्वणम्मि वट्टंता ।

अंतिमएसु अ थेरा, जीवा पण्हेसु णायव्वा ॥ ८७ ॥

प्रथमवर्गाक्षरबहुले प्रश्ने बाल[ः], पुमां(मान्) स्त्री नपुंसकं च भवति । तृतीयवर्गाक्षरे त्वभिहितेषु तरुणु(ण) एतान्येव स्त्री-पुं-नपुंसकानि यौवनावस्थानेऽ(स्था)नि । पञ्चमवर्गाक्ष(रे)ष्वभिहितेषु वृद्धु व(वृ)द्धानि ज्ञातव्यानि । द्वितीय चतुर्थवर्गयोरभिहिते एत एतान्येव मध्यमवयोऽवस्थानि ॥ ८७ ॥

सामा कण्हसामा, गोरी णीला य रत्तसामाचेव(°मा य ?) ।

पढ पच [प २ पं १] वि वग्गा, कमसो पण्हंमि य विभत्ता ॥ ८८ ॥

प्रथमवर्गः श्या(श्या)मः । द्वितीयो वर्गः कृष्णश्यामः । तृतीयो वर्गो गौरः । चतुर्थो वर्ग(र्गो) नीलः । पञ्चमो रक्तश्यामः । एवं पञ्चाप्येते वर्णाः क्रमश(शः) प्रविभक्ताः । प्र[श्ने]षु मध्ये येषां [वर्णानां] बाहुल्यं भवति तैः वर्णै(र्णै)र्निर्देश्य(श्या) वर्णाः ॥ ८८ ॥

जारिसय(ये) परपक्खे, संजुत्ता तारिसा तहिं सामा ।

हीणा समाऽहिया वा, सेसा परपक्खसंजुत्ता ॥ ८९ ॥

यादृशः परपक्षः । कोऽसौ परपक्ष ? द्रव्यमित्यर्था मध्य[वि] । तत्सामिदृशः यादृक् स्वरूपसा(सा)मान्य[प १ पं १]सो वर्णो येऽभिहितव्य[ः] यादृशा(शा)स्ते ज्ञेयाः । हीना(नाः) समा [अ]धिका(का) वा ते भवन्त(न्ति)विधाः । तत्र हीना जातिहीनाः, समा जातिसमा, अधिका दृष्टाः । परपक्षप्रहेण च पूर्वोभिहिता जातिहीना [अ]धिसमित्र दृष्टाः ॥ ८९ ॥

॥ मनुष्यप्रकरणं समाप्तं समाप्तम् ॥

पक्खी दिट्ठे सत्तमसरे य वग्गे य पढमए अक्खरा ।

दसमसरे य कवग्गे, पउमा पक्खी(क्खी) दु णायव्वा ॥ ९० ॥

सप्तमस्वरा एकारः । प्रथमवर्गे ककार(रः), दृष्टासति(°ष्टाभिहिते ?)ऽर्थे प्रश्न पक्षियोनी प्रथमे(प्रश्ने) वर्ण(प ११ पं १)ः पक्षी ज्ञेयाः । दशमस्वर औकारः कवर्गाक्षरेण ककार: केवल स्पष्टः । औकारे ककारनोत्तरितसो-उन्नोद्या-पञ्चरत्नवविते पक्षयोनौ प्रश्नार्थं पक्षाः पक्षिणो ज्ञेयाः ॥ ९० ॥

नवमसरे वग्गंमि, तइएँ पक्खिणो तहा जलया ।
थलया बारस अट्ठम, सरे चउत्थे टवग्गंमि ॥ ९१ ॥

नवमस्वर उ(ओ)कारस्तृतीयवर्गचकारस्योपरिगतोऽग्रतो वाऽनन्तरमवस्थिते जलजा· पक्षिणो ज्ञेयाः । द्वादशमस्वरः अकारः सविसर्गः, अष्टमस्वरः ऐकारश्चतुर्थवर्गः टकारः । टकारेण च स्थलजाः पक्षिणो ज्ञेयाः पूर्वोक्तन्यायेनेति ॥ ९१ ॥

अणुणा[प० ५२, पा० २]सिएसु पंचसु, तीसु य धाउस्सरेसु णायव्वा ।
पक्खीओ कुकिआ खलु, वायसगिद्धा य चडया य ॥ ९२ ॥

ङ ञ ण न म बहुले प्रश्ने एषामन्यतमे धातुस्वरात्रयोऽन्यतमयुक्ते जीवयोनौ लब्धे पक्षिणो ग(र्हि)ता[·] भा(चा?)सादयश्चटका गृध्रा वायसाश्च ज्ञेयाः। धातुस्वराः के? उ ऊ अ इत्येते त्रयः॥९२॥

॥ सप्तपञ्चं पक्षिप्रकरणं समाप्तम् ॥

स(सिं)गी कचाइवग्गे, गजा[इ]वग्गे चउप्पया ख(खु)रिणो ।
दुस्स[र]सरा हु सव्वे, सिंगीखुरीण तु सामण्णा ॥ ९३ ॥

ककारस्य चकारस्योपरिमतो(गते)न चतुर्णां ह्रस्वस्वराणामन्यतमेन तयोरेव ककार-चकारयोरग्रतोवाऽवस्थितेन, ना [प० ५३, पा० १] नरा[ः] शृंगिणश्चतुष्पदा ज्ञेयाः । के ते ह्रस्वस्वराः ? अ इ उ ए । अधरस्वरेण ऐकारेण औकारेण च युक्तस्य ककारस्य च व(च?)कारस्य या सवो(तो)ऽर्वाक् स्थितयोः एकारौकारयो आरण्याः शृंगिणो ज्ञेयाः । गकारस्य जकारस्योपरिगतो ह्रस्वस्वराणामन्यतमेग(न) तयोरेव गकार-जकारयोरस(ग्र)तो वाऽवस्थिते खुरिणच(श्च)तुष्पदा ज्ञेयाः । गकारे जकारे वा अधरस्वरसयुक्ते खुरिणश्चतुष्पदा ज्ञेयाः । गाथयाऽनुक्तमप्येत[द्] व्याख्यातम ॥९३॥

बितिउ(ओ) दसमो य सरो, खछादिवग्गंमि चेव दंतीओ ।
अणुणासिएसु पंचसु, णहिणो धातुस्सरेसुं च ॥ ९४ ॥

द्वितीय [प० ५३, पा० २] आकार·, ऊ(औ)कारो दशमः, खकार-ठ(छ)कारस्योपरि गतस्तयोरेव ख-छयोरग्रतो वा व्यवस्थिते आकारे औकारे वा दन्तिनो ज्ञेयाः । ङ ञ ण न मे सु(पु) पञ्चसु धातुस्वरयुक्तेपु ङ ञ ण न मा ना वाऽग्रतोऽनन्तरमवस्थितेपु नखिन्नो(नो) ज्ञेयाः । धातुस्वराः उ ऊ अ ॥ ९४ ॥

घ झ ढे सु होइ दाढी, दंती तह वस(ध न) व हे सु णायव्वा ।
चउरट्ठमबारसमस(स्स)रो य दोण्हं पि सामन्ना ॥ ९५ ॥

घ झ ढा नामुपरिगते इ(ई)कारे [प० ५४, पा० १] ण(ऐ)कारे सविसर्गे च(अ)कारे घ झ ढा ना मग्रस्थितेपु वा ईकारादिषु दढि(ष्ट्रि)णः सूकरादयो द्रष्टव्याः । ध न व ह्रा नामुपरिगते(तै)स्तैरेव समि(म)स्वरैरग्रतो वा व्यवस्थितैर्दन्तिनो द्रष्टव्याः । के त्रयः स्वराः ? ई ऐ अः ॥ ९५ ॥

दिट्ठे चउप्पयमि य, पण्हे जय पीसए उवरि मत्ता।
तो सिंगिणो हु भणिया, खुरिणो अह मत्तया होंति ॥ ९६ ॥

गोमहिषादयः क्षीरचतुष्पदाः जीवाश्रयस्य चत्र नवया चतुष्कोऽपि द्रष्टव्यः। [प ५४ब १] शृंगिषु सिद्धेषु परस्परामिश्रणाको भ(म)हिषादो ज्ञेयः। चतुष्पदयोनौ प्रश्ने पतोपरिमात्रमात्रामुखं दृश्यते तदा शृंगिणो ज्ञेयाः। तस्मिन्नेव चतुष्पदयोनौ प्रश्ने यदा अधोमात्रामुखं दृश्यते तदा खुरिणो ज्ञेयाः। तस्मिन्नेव चतुष्पदयोनौ प्रश्ने उकारमात्रामुखं खुरिणो ज्ञेयाः। अ(औ)कार-कारयोस्तुल्यत्वेन(न)नरिंगणस्य साम(सर्वे)योनिः। अ(ओ)कारयो(र्यो)रपरिस्थितस्य नखिनो(नो) ज्ञेयाः। [प ५५ब १] उभोत्तरेणाधरेण दक्षोत्तरं नखिनं खुरिणं वा कथयेत्। अधरेणाधरं(स्वरं)नखिनं खुरिणं वा कथये[त्] ॥ ९६ ॥

॥ चतुष्पदप्रकरणं समाप्तम् ॥

सिंगिससा(मा?) किण्हावी, हत्थि(वन्ति)समा राहला(नायरा) मुणेयव्वा।
सेसा तिण्णि वि वग्गा, वण्णतरियाण सप्पाणं ॥ ९७ ॥

शेषु शृंगिणोऽभिहितावर्गेष्वेव कृष्णपौरा द्रष्टव्याः। चवरकौलिकाः, अपरकौरदशकाः। शेषु दन्तिनोऽभिहितावर्गेष्वेव मिश्र(?) द्रष्टव्याः। शेष चोकारेषा(?)[प ५५ब १]पवि(जर्दी)-चित्रार्थं च च द्वाभ्यां चातुर्थ्ये वर्णोन्तरितो(काः) चित्रवर्णकाः सर्पा द्रष्टव्याः। अपायार्थं मयोषु च कृत्येषु पर्वविशिष्टो चान्य इति ॥ ९७ ॥

॥ जीवचिन्ता समाप्ता ॥

अथ तत्थ धाउचिंता, सा दुविहा होइ आणुपुव्वीए।
धम्मा[ऽ]धम्मा [य] तहा, धम्म(म्मा) लोह अलोहं च ॥ ९८ ॥

धातुचिन्ता द्विविधा अनयानुपूर्व्या धाम्या [अधाम्या] च। तत्र धाम्या लोहलक्षणा, अधाम्या मृत्प्रस्तरादिलक्षणा ॥ ९८ ॥

कणयरयय तंबं, तउ सीसं आर कंस लोहं च।
लोहं अट्ठवियप्पं, प्प(प)धाण तह अप(प्प)हाणं च ॥ ९९ ॥

काञ्चनं, रजतार्थं (रजतं), [प ५६ब १] ताम्रं त्रपु, सीसकं=नागं, आरं=अ(म)य रीतिका दूर्व कोहं वा कंसं कृष्णलोहानि(इति)अष्टभेदम्। प्रधान[वर]लघुके मत्ते लोहत्रयं सुवर्णादि ज्ञेयम्। अप्र(प्र)धानलघुके मत्ते लोहपञ्चकं त्रपु-सीसक-कृष्णलोहानि ॥ ९९ ॥

इट्टा य मट्टिया सक्करा य धम्मा इमे य लोहा य।
रयणा य पत्थरा पुढवि मट्टिया चेव णो धम्मा ॥ १०० ॥

इष्टका स्थूरकर्परा, [मृत्तिका], स(श)र्कराश्च धाम्याः । त्रीण्येतान्यपि । लोहामि(नि) । रत्नाति(नि) पाषाणा[:], पृथीवि(वी), मृत्तिका चाधाम्या धातवश्चत्वारः ॥ १०० ॥

रयणा य इदंनीला, मरगय तह वेरुलीयजाजी(ती)या ।
अयकंत-सूरकंता, [प० ५६, पा० २] चंदकंता य नायव्वा ॥ १०१ ॥

इन्द्रनील-महानील-मरक्त-वैडूर्याः, अयस्कान्ताः, सूर्यकान्ताः, चन्द्रकान्ता च(श्च) रत्नविशेषा ज्ञेयाः ॥ १०१ ॥

मोत्तिय-पवालमाई, भवंति एवंविहा [तहा] अन्ने ।
ते ससा(सा)रा णिस्सार(रा), य होंति पुण संखमादीया ॥ १०२ ॥

मौक्तिक-प्रवालाः । एवविधा[:] तथाऽन्ये सङ्खादर्तियो (पि शंखादयो) विमलकाराद्य[:] ते सारा असार(रा)श्च । तत्रोत्तराक्षरबहुले प्रश्ने धातुयोनौ लब्धे ससारा मुक्ता-प्रवालादयो ज्ञेयाः । अधराक्षरबहुले प्रश्ने निःसारा विमल-सख(शङ्ख)-मु(शु)क्ति-कपर्दकप्रभृतयः ॥ १०२ ॥

सीय-दहा य [स]मुदा(द्दा), णदी तडागा [प० ५७, पा० १] तहेव पम्मघ(स्सव)णा ।
एक्केक्कं तं दुविहं, थिरं चलं चेय नायव्वं ॥ १०३ ॥

सीतजला(? शीतह्रदा)नि समुद्रा नदी तटाकानि प्रश्र(स्र)वणमेकैकम् । तेषां द्विविधं—स्थिरं चल चेति । तत्र स्थिरमवहमशोश(षं) चोत्तराक्षरैः द्रष्टव्यम् । यद्वा वहति शुष्यति च तच्चलमधराक्षरैर्द्रष्टव्यम् । नामाक्षरलावे(पे)न वस्तु-विचार-स्थानं सन्निवेसा(वेशा)दि ज्ञेयम् ॥ १०३ ॥

उण्हंगारा तह मोमुणा(मुम्मुरा) य अण्णा य एवमाईया ।
उक्का विज्जा(ज्जू) अव(स)णी णिग्घाउ(ओ) सूरकंताउ ॥ १०४ ॥

उष्णा[ङ्]गाराश्च मुमु(र्मु)रग्रहणेन कुकूलमुच्यते । एतौ च धाम्यधातुसञ्ज्ञौ वाक्याक्षरैर्ज्ञात[प० ५७, पा० २]व्यौ । उल्का विद्युदशति(निः) निर्घातः सूर्यकान्त पर्व्वते अधाम्यधातुसञ्ज्ञाः । वाक्याक्षरो(र)नामतो ज्ञेयाः ॥ १०४ ॥

एसा(गा?) पत्थरजी(जाई), से(सा) सवियप्पा पधाण अप्प(प)हाणा ।
सा परिकमि(म्मि)[य अ]परा, णाअधं(बं) जं जहिं कमइ ॥ १०५ ॥

पाषाणजातिसामान्यादेका पाषाणजातिः । सा द्विभेदा भवति । प्रधाना अप्रधानाश्च (च) । तत्र उत्तराक्षर(रैः) परिकर्म(र्मि)ता पाषाणअतिद्र(जातिर्द्र)ष्टव्या । अप्रधानाश्च (च) अधराक्षरैः अपरिकर्म(र्मि?)तपाषाणजातिद्र(र्द्र)ष्टव्या । [प० ५८, पा० १] अप्रधाना च । यथायोगं वस्तु(स्तू)पलंभः कार्यः स्वनामनि । परिकर्मिता [ट]कघटिता । देशतश्च विज्ञातव्या अवत्याद्या मारवा[:] क्षेत्राः । द्रोणमुखाः, के ? यत्रागम्य यानपात्रान(ण्य)वतिष्ठते(न्ते) ते देशा द्रोणमुखसञ्ज्ञाकराः (सञ्ज्ञकाः?) । खेटकाः, के ? उच्चप्रदेशबहुले भूभागे यो निवसते जनपदः स खेटकसञ्ज्ञः । पृथिव्या एते भेदा भवन्ति । व्याख्यामि मृत्तिकाभेदमिति वक्ष्यमाणोपन्यासः ॥ १०५ ॥

हरियालमम्मपडलं, [प ५८ B १] मणसि(स्सि)ला पारय च सोषव ।
तह च(चु)ण्णपारओ त्ति य, मट्ठ(ट्टि)यभेदा मुणेयव्वा ॥ १०६ ॥

हरितालम् अभ्रपट(ट)लम् मन शि(शि)ला, पारद(दे), चूर्णपारद(दे) । मृत्तिकाभेदाः पञ्च । तत्र चूर्णपारद(दे) इति द्वितीयपाद[द]मपि चूर्णाकारं ग्राह्यम् ॥ १०६ ॥

पण्हक्खरेहि एते, णायव्वा जे जहा समुदि(द्दि)ट्ठा ।
अधरोत्तरक(क)मेण य, सणामनिदे(द्दे)सतो यावि ॥ १०७ ॥

प्रश्नाक्षरैरेतान्येव भेदा विज्ञेयाः । यथा(था) एते प्रोक्ताः(क्ताः)क्रमेण अधरोत्तरक्रमेण ज्ञेयाः । स्वनामनिर्देश इति ॥ १०७ ॥

ग छ ठ थ फा य स[ह] वि य, दिट्ठे धाउमि होइ धम्माओ ।
अट्ठक्खरा हु पुट्ठे, सेसमधम्मस्स(क्ख)रा सव्वे ॥ १०८ ॥

ग छ ठ थ फ(फ) य स ह नामैता[नष्टौ] धातुरूपेण धातुयोनौ धर्म्यार्थं धातुर(रु)क्त(क्ता) धर्म्याः । शेषाः [प ५८ १] 'गछठथफयसह' इत्यष्ट पदं पृच्छ्ये । ना(ना)न्येन धातुयोनौ धर्म्यार्थं सर्वे वर्णा धातुरूपेण धातुरत्नस्य लाभे स्व इति ॥ १०८ ॥

पढमक्कारसरस(क्खसरा)समसरे य कणयं तु क च ग घे सु य ।
पणट्ठुमयसरेसुं, पढमेऽणुणासिए य तउ ॥ १०९ ॥

प्रथ(थम)स्वरा अकारः, द्वितीयस्वरा अकारः सानुस्वारः, अकारः सविसर्ग(र्गो) अष्ट म(मे)स्वरः । एतद्युक्ते प्रश्ने धातुयोनौ कनकं सुवर्णं ज्ञेयम् । क ख ग घ(ध) नामाक्षरसंयोगे एतो(तै)र्नैवप्रथमस्वरेण युक्तेन कनकं ज्ञेयम् । क ख ग घ नामाक्षराणि प्रथमस्वरेण युक्ते धातुयोनौ धर्म्यार्थं त्रपु ज्ञेयम् ॥ १०९ ॥

च छ ज झ य र ल व एसु य, रययं सीयस(स्स)रसत्तमेसु य ।
अणुणासिए य विसग्गिए, छट्ठे य सरे [प ५८ २] हवइ सीसं ॥ ११० ॥

च छ ज झ [य] र ल व एषु च प्रश्ने धातुयु(यो)नौ तत्र प्रथमस्वरे द्वितीयस्वरेण सप्तमस्वरेण च युक्ते धातुयोनौ धर्म्यार्थं रजतं ज्ञेयम् । च छ ज झ [य] र ल व एषु च [ए]नामाक्षरेषु अक्षरे(रे)युक्ते प्रश्ने अनुनासिके च द्वितीये धातुयोनौ धर्म्यार्थं ष(ष)ष्ठस्वरेण च युक्ते सीसकं ज्ञे[प ५९ १]यम् ॥ ११० ॥

ट ठ ड ढ ई कारसि(म्मि) य, तय कंसं पुण त थ द ध(धे)सुं च ।
प फ ब भ पवमे य सरे, चउत्थ अणुणासिए आर ॥ १११ ॥

ट ठ ड ढ(ण)नामाक्षरेषु युक्ते प्रश्ने चतुर्थस्वरेण युक्ते धातुयोनौ धर्म्यार्थं ताम्र(म्रं)-मादेश्यम् । तथा इमौ(मा) त थ द धा नां नामाक्षरे युक्ते प्रश्ने त थ द धानां नामाक्षरे [प ५९ २]न चतुर्थस्वरेण युक्ते कांस्यमादेश्यम् । प(प) फ ब भ इत्येते नामाक्षराक्षरमाधार युक्ते प्रश्ने देवमेवामाक्षरेण पञ्चमस्वरेण अ(ओ)कारेण युक्ते धातुयोनौ आरं तथा रीतिक पञ्चलोहं वा ॥ १११ ॥

हत(व)इ मकारे लोहं, दसमसरे अट्ठमंमि वग्गंमि ।
एते उ धम्मभेया, अधम्मभेया इमे वोच्छा(च्छं) ॥ ११२ ॥

मकारेबहुले प्रश्ने शकारोऽष्टसा(मा)क्षर(रः) तद्बहुले च, औकारः दशमः स्वरः, तेन तु युक्ते मकारे शकारे वा धा .. . .

...............*न पवालं हेममातिण्णो(?मोत्तियं) ।
कतमाण(सं मणिं च)कायं सीसट्ठाणं चाय(च?) नीसासं(रं) ॥ ११३ ॥

अधाम्यधातुयोनौ लब्धाया रजताक्षरा ये उक्तास्तेपु दृष्टेपु मौक्तिकं द्रष्टव्यम् । सुवर्णाक्षरा ये उक्तास्तेपु दृष्टि(दृष्टेपु?) स्वराश्च येऽभिहिता तेस्व(ष्व)धाम्यधातुयोनौ लब्धायां प्रवालकं वक्तव्यम् । कसाक्षरा येऽभिहिता स्वरयुक्तो(क्ता) आ(अ)धाम्यधातुयोनौ लब्धाया तेपु मणयो निसा(स्सा)रा ज्ञातव्याः । कायमादिका येस्व(ष्व)क्षरेपु सीसकं द्रष्टव्यम् । तेष्वेव अधाम्यातुयोनौ लब्धायां निःसा[राम]मणयो वि[म]लकाव्यो विज्ञातव्याः ॥ ११३ ॥ [प० ६१,पा० २]

॥ धातुप्रकृतिः समाप्ता ॥

धम्मंमि दिट्ठपुव्वे, [घडियम]घडियं च तत्थ णायव्वं ।
दुविहं च होइ तं पुण, णाणय अण्णाणयं चेव ॥ ११४ ॥

धाम्यधातौ दृष्टे तद् घटितमघटित चेति । यच्च घटितं त[द्] द्विविधम्—केयूररूपक-द्रमादि, यत्तक्क(यच्च) [नाणकम्] । अनाणकम्—कुंडलनूपुररसनाकेयूरकटकादिकम् ॥ ११४ ॥

दिट्ठंमि णाणयंमि [प० ६२,पा० १] य, सम्मिस्सं होइ [तह य] उम्मिस्सं ।
इतरं पि होइ दुविहं, आहरणं भायणवि[य]प्पं ॥ ११५ ॥

अक्षरलब्ध्यधातके (लब्ध्यंकिते?) नूपुरादौ नाणके । तद्ध(च्च) नाणक द्विविधम्—सिश्रमसिश्र चेति । तत्र मिश्र सुवर्णरजवताम्रैस्त्रिते(त्रैस्त्रिभिरिति?)रेपा द्वयेन वा यत् क्रियते तन्मिश्रम् । यत्सुवर्णेनैकेन रजतेन वा क्रियते नाणक तदमिश्रम् । सुवर्णा[प० ६२,पा० २]दिद्विविधं भांडक्ष-(क्रु?)वमाभरण चेति ॥ ११५ ॥

आभरणंमि य दिट्ठे, तं दुविहं देवमाणुसाभरणं ।
हिट्ठमि(ट्ठिम)उवरिमकाए, एक्केकं तं पुणो दुविहं ॥ ११६ ॥

अक्ष[र]लाभेनाभरण यद् दृष्ट तद् द्वि[वि]धमाभरण देवामरसीसातुपाहरणावाता (?देवाभरण मानुपाभरण वा ।) तत् पुनर्द्विविधम्—एकैकम—अधःकाय(यि)कं उपरिकायिकं चेति । तदुपरिष्टाद्वे(द्वि)शेपत[ः] कथयिष्यामः ॥ ११६ ॥

पच्चुय-पपुव्वयं(मपच्चुयं) वा, एक्केक्कं तं पुणो दुहा होइ ।
पच्चोविए वि दिट्ठे, मोत्तिय-माणिक्क-उम्मिस्सं† ॥ ११७ ॥

---

* अत्र मूलादर्शे एका संपूर्णा पङ्क्तिरक्षरशून्या स्थिता लभ्यतेऽतोऽस्या गाथायाष्टीकाया कियान् भागस्तथैवाग्रेतनगाथाया प्रथमः पादो विनष्टः ।

† आदर्शे 'मोत्तिय अमाणिक्कमुम्मिस्सएण' इति बहुविकृतपाठो दृश्यते ।

मदामरणमपाकायिकमौपरिक[प ११ क १]मिति च। व[ट्] त्रिविधमुक्तम्। मस्तुत(स)म मस्तुत च। तदेकैकं पुनः त्रिविधम्। मस्तुममिति संक्षिप्तमभिमौपिक कठकमपामरणमुच्यते। पूर्वोक्तमेममौपिकममरणतुके प्रश्ने मासुक्रमभावेनैव मस्तुमं ज्ञेयम् ॥ ११७ ॥

उवरि[य]णत्रण(ण्ण)सहिया, उड्डा(वड्डा) मचाउ जा य धीसवि ।
मामरणं आणिज्जा, उवरि स(स)रीरमि देहि(ही)णं ॥ ११८ ॥

ममाभरणां उपरि रत्नमाला दृश्यन्ते तदाऽऽमरणमपगच्छ उपरि शरीरस्य देह स्थानमिति ॥ ११८ ॥

अहरामो अहरेसु, मचामो जारिसामों तारिसयं । [प ११ क १]
सं(सं) ठाणं [प]एसमि य, भाउविसेसेण णायव ॥ ११९ ॥

अधराविकमरणमे अधरकायिकमामरणं ज्ञेयम्। उपरामरणतुके प्रश्ने उपरिकायिकाभरणं ज्ञेयम्। अधोमागाविकमत(मे) अधरकायिकमामरणम्, तिर्यग्भागाविकमने तिर्यग्भागे चं(ऽङ्कं)कारो ज्ञेयः। कर्ध्वभागाविके प्रश्ने शरीरस्योर्ध्वभागे ज्ञेयं धातुविशेषेणेति ॥ ११९ ॥

दिट्ठे मणिमि पचोवियम्मि जीतव(जाती यदी) हो[इ] इयर वा ।
जातीए माणिक्ष, पत्था[प १४ क १]सजाती विजातीए ॥ १२ ॥

दृष्टेमणिमिति मधु(सु)मे पूर्वन्यायेनैव वैडूर्यादिः सारः तस्य सुवर्णस्थो यस्तः तैः सार ममिमधु(सु)समामरणं ज्ञेयम्। येन मि(मि)श्राद् विमलकारस्य रूपस्थैः प्रश्ने द्वे(है)र्मिः सार्द्[ध] मधु(सु)समामरणं ज्ञेयम् ॥ १२ ॥

तम्मिस्स(तं पि य सा)यमलय(साया), जं तस्थ[स]य पुणो वि य दुविहं ।
दुपय(ए) चउप्पए वा, दुपए पक्षी(पक्खी) मणुस्सो वा ॥ १२१ ॥

तदाभरणं वि(द्वि)विधं आयमकारं येति। आम्यपत्ताभरणतुके प्रश्ने [प १४ क २]जीवाभरणेति अजातमाभरणं ज्ञेयम्। जीवाभर रूके च जातममरणं ज्ञेयम्। तत्र जीवाभरैः पक्षिणो मनुष्याश्च ज्ञेय[ाः]। चतुष्पदजीवाभरैर्हंसी मयी मयूरी तुरी वा ज्ञेयाः। पूर्वो(र्वो)क्तर मे(मे)देन पूर्वोक्तन्यायेन च ॥ १२१ ॥

दिट्ठे चउप्पये गामवासिणो रण्णवास(सि)णो चेव ।
पुती सिंगी य खुरी, णही य दाढी य वा होज्जा ॥ १२२ ॥

दृष्टे चतु[ष्प]दि के ते चतुष्पदाः ? द्विविधाः—ग्रामवासिनोऽरण्यवासिनश्च। पूर्वोक्तमध्ये दन्ती मयूरी तुरी मयी शृङ्गी नेति पञ्चविधाः। पूर्वोक्तन्यायेन जीव(से)[प १५ क १] मध्ये ज्ञेयाः ॥ १२२ ॥

पचोविए वि दिट्ठे, जो गमठ(ओ) देवमाणुसामरणो ।
सो चेव य सविसेसो, णायव्वो भायणेसु वि ॥ १२३ ॥

मस्तुमेऽपि दृष्टे देवशरीरस्थानां मानुषाणां वा आभरणानि यानि ज्ञेयानि प्रश्ने दृष्टे माजनान्यपि ज्ञेयानि। हेमाभरणैश्च हेमानि रूप्याणि ज्ञेयानि। वैडूर्यैरूप्याणि चोक्तान्यपि ॥१२३॥

धाउस्सराणुणासी, छिद्दा णिढि(च्छि)द्द सेसया वण्णा ।
छिद्देसु जाण छिद्दे, णि(मि?)स्सेसु य खुम्भियं दी(द)वं ॥ १२४ ॥

धातुस्वरौ द्वौ उकारो(र-ऊ)कारौ, ङ ञ ण न माः पञ्चानुनासिकाः, छिद्रा[ः] । प्रथम[प० ६५,पा० २] वर्णाः तृतीयवर्णश्चान्त्या(न्त्या?) यागाषेया(यरलषा?) पञ्चा(र्णा?) नि(छि?)द्रा ये च द्रष्टव्या[ः] । द्वितीय-चतुर्थवर्गौ निछिद्रो(द्रौ) द्रष्टव्यौ । छिद्राक्षरबहुले प्रश्ने छिद्रे(द्रो) धातुरादेश्यः । घनाक्षरबहुले घन(नः), छिद्राछिद्रेषु मिश्रेषु दृष्टेषु क्षुभितं धातु द्रव्यमादेश्यम ॥ १२४ ॥

॥ धातुयोनिः समासः(प्ता) ॥

रुखा(क्खा) ग(गु)च्छा गुम्मा, लया य वल्ली य पव्वया चेव ।
तण[प० ६६,पा० १]वलय-हरित-ओसहि-जलरुह-कुहणा भवे मूले ॥१२५॥

वृक्ष-ग(गु)च्छ-लता-गुल्म-वल्ली(ल्ली)-पर्वक-तृण-वलय-हरितौ-षधि-जलरुह-कुहणा इति ॥ मूलभेदा द्वादस(श) ॥ १२५ ॥

एगट्ठिय वहुवीया, रुक्खाणं चेव होंति दो भेदा ।
सेसा वि ग(गु)च्छमादी, वण्णाण कमेण णायव्वा ॥ १२६ ॥

तत्रैकास्थि-बहुबीजाश्च द्विविधा वृक्षा भवन्ति । शेषा अपि [प० ६६,पा० २] ग(गु)च्छाद्या वर्णाकारप्रमाणादिभिरनुक्रमेण ज्ञातव्या[ः] ॥ १२६ ॥

तय-मूल-कंद-साहा-पल्लव-फल-कुस(सु)ममेव णिज्जासो ।
रस-छीर-पसाहाओ, [य] मूलजाईअ(सु) भेयाई(?) ॥ १२७ ॥

त्वग्-मूल-स्कद(ध)-शाखा-पल्लव-फल-कुसुम-बीज-रस-भेदाश्च मूल-जातिषु विज्ञेयाः । को गुणभेदः ? । सुरभि[ः][प० ६७,पा० १] दुर्गंधिश्चेति । को वा रसनेवा (भेदः ?) मधुर-लवण-कटुक-कषायादिलक्षणः ॥ १२७ ॥

ग(गु)च्छा बहुप्पयारा, कप्पास-करीर-पुप्फग(गु)च्छा य ।
गुम्मादिया य जाती-कुज्जय-कणवीर-वल्ली य ॥ १२८ ॥

ग(गु)च्छा बहुप्रकारा । के ते ? कप्पा(र्पा)स-करीर-पुप्पग(गु)च्छाय(श्च) । के पुप्पग(गु)च्छा भण्यन्ते ? । ये पुप्प केवल प्रय[प० ६७,पा० २]च्छन्ति न व(च) फलं वंधन्ते । तत्र गुल्म(ल्मा) जाति(ती) कुब्जका कणवीर मल्लिका चेति ॥ १२८ ॥

चंपय-असोय-चूया, कुंदलयाओ व होंति विविहाओ ।
तंबोल-लवलि-पिप्पलि-मिरिया वि य होंति क(व)ल्लीओ ॥ १२९ ॥

चपकासो(शो)कचूता लतासदृशकाः । कुन्दश्च लतासदृशः । तावो(ताम्बू)ल-पिप्पलि-मरीचाद्या वल्याः(ल्ल्यः) ॥ १२९ ॥

दूर्वा(दुव्वा)कुसतृणवध्वपय(?)यवसालिकंगुगोधूमादीया ।
जलसंभवा य हरिया, गंधेणुयादि मुणेयव्वा ॥ १३० ॥

दूर्वा-कुस(श)-दर्भ-बल्वज(जा)-वन-शा(श्या)मा-कंगु-गोधूमाद्याः तृणसंज्ञा[ः] । अन्येऽपि तथा एव । हरितसंज्ञाया गौतमाद्या ज्ञेयाः ॥ ११० ॥

मलया साहा सिवया, पलकंवलसरलपम्मणा(मा)दीया ।

सिलसुग्गमायपवणा[प १४ ब १] या[इय मो]सहिओ मुणेयव्वा ॥ १११ ॥

पाला(पला)श शाखा म(प)लक कंवल-सरल-पद्माद्याः शिलसुग्गमायपवनकाद्या ओषधयः ॥ १११ ॥

पउम(मु)प्पलकुसुवाई, मे(सि)वालकसे(सि)क्या य जलपसुणा ।

मो(नाणा)विहा य अण्णा, सिंघा[ड]गरलि(वल्लि)मादीया ॥११२॥

पद्मोत्पलकुमुदशैवालकसेरुकाः नानो(नान्या)विधाश्चान्ये शृंगाटकवल्ल्याद्या जलचर संज्ञकाः ॥ ११२ ॥

हो(हो)ति कुहणा अबीया, पसुभोर(धाएरा) समवा य जे अण्णे ।

तत्थ कुहणा या(य) इयरे, भूमीरसकयली उण्हू ॥ ११३ ॥

अबीजाः मातृ(द्र)व्याश्च ताश्चान्ये बहुला अन्ये(पि) पद्माम्ब[र]रसं कुर्वन्ति तत्सं(स्त्री) मधाव्यप्रका[ः] इत्यन्[ः], अपरेऽपि वराहतया ये तत्रान्ये भर(सू)संज्ञ[ ]कंदस्कंधेति॥११३॥

इक्खुण-वेणुय-वेता-सरकडसयंगपव्वगो हे(णे)या । [प १४ ब १]

बारसविमास(या य) मूला, कहिया जिणसासणम्मि सया ॥ ११४ ॥

इक्षुवेणुवेत्रसरकांडिर्मंगाद्य नलकादि(नि) मन्यन्ते । एते पर्वग(र्वा)संज्ञाः । पर्वमि पर्वम्युक्तेभ्योऽन्ये(ऽ)न्य तत्पत्र इति पर्वगाद्या मन्यन्ते । द्वादश(दश)विधानि(नि) मूलानि(नि) कथितानि जिनशा(शा)स्त्रे ॥ ११४ ॥

मूला कन्दा य तया, साह य(प)वाला य तह य पत्तफलं ।

पुप्फाणि य [बीया]णि य, आमिस्सा ज जाहिं कम्मइ ॥ ११५ ॥

मूल-कंद-त्व[क्-]शाखा-प्रवाल-पत्र-फल-पुष्प-बीजा[नि] [प १५ब १] संज्ञानीति । तद्यथा तथ(पु)[प]रिज्ञाय(ज्ञ)त्वमि ॥ ११५ ॥

मक्खाऽभक्खा य पुणो, म[क्खा] तित्ताविया य पंच[र]सा(सा) ।

गामारण्णा जल-थलय पहाणा अप्पहाणा य ॥ ११६ ॥

भक्ष्या अ(भ)क्षा(क्ष्या) विविधाले । तत्र भक्षा(क्ष्या)तिक्त(क्त)कटुकषायाम्लमधुरा पञ्चरसाः । ग्राम्या आरण्याश्च । प्रधाना[ः] जलस्थलाश्च । प्रधाना [अप्रधाना]श्चेति ॥ ११६ ॥

पण्हक्खरेहि एसे, णायव्वा जे जहा समुद्दि(द्दि)ट्ठा ।

अधरधरक(क्ख)मेण य, सणामणिवे(दि)सओ आसि ॥११७॥ [प १५ ब १]

ये यथा क्रमस्ते तथा पश्नाक्षर(र)युक्ते प्रश्ने अनुक्रमात्[ः] विज्ञातव्यम(ी) पूर्वविधिः सुरभीविभुत्व प्रश्नाः । अधराधरयुक्ते प्रश्नेऽपि एवं पूर्वोक्त अनुक्रमात् एवंत(त्वा)दुर्गमाः

नीरसाः ह्रस्वाश्च भवन्ति । तैरेव प्रश्नाक्षरै[ः] नाय[द्]व्वेया यांव[द्] नामवि(नि) दृष्ट इति [प०७०,पा०१] ॥ १३७ ॥

॥ मूलभेदाः समाप्ताः ॥

संजुत्ते फलभेदे, खाघण्णे रिक्खं(क्खरं?)मि णिप्पु(प्फ)ला भणिया ।
उवरिल्ले उवरिल्ला, अधरा [अ]धरेसु नायव्वा ॥ १३८ ॥

सयुक्ताक्षरबहुले प्रश्ने सफला वृक्षा ज्ञातव्याः । के ते सयुक्ताक्षराः ? क्ख च्छ ट्ट त्थ । प्फ ग्ग घ ज्झ ड्ड द्ध ब्भ ल्ल व इत्येते । [प०७०,पा०२] क्खट्टसररैच(श्च)तुर्भिरक्षरै(रैः) सफला वृक्षाः । उवरिल्ले उवरिल्लाक्षरैरुत्तराक्षरैरित्यर्थः । तैरक्षराणामुपरिगतैद्द(ट्ट)ट्टू(ष्ट्र)आदीनामुपरिभागे फल इत्यादेश्यः(श्यम्) । अधराक्षरैः उत्तराक्षराणामुपरिगते दृष्टे वृक्षादि(दी)नामधोभागे फल वक्तव्यम् ॥ १३८ ॥

पढमे नवमे य सरे, क-चादिवग्गंमि चेव रुक्खाओ ।
वितिय-दसमे य सरे, लताओ ख छ ठ क्खरेसुं च ॥ १३९ ॥

ककार-चकारबहुले प्रश्ने [प०७१,पा०१] ककारस्य चकारस्योपरिगते अकारे उ(ओ?)कारे वा अन्यतरस्यामतो वाऽनन्तरमवस्थिते वृक्षा ज्ञेयाः । ख छ ठ बहुले प्रश्ने ख छ ठा नामेकस्मिन् द्वितीयेन आकारेण दशमेन औकारेण वा युक्तेऽमतोवाऽनन्तरमवस्थितानामन्यतरस्य लता[ः] प्रत्येतव्याः ॥ १३९ ॥

थ फ र स एसुं वल्ली, तणं च धातुस्सराणुणासीया ।
चउरट्ठमबारसमे, सरंमि ग(गु)च्छा य घ झ ढे सुं ॥ १४० ॥

थ फ र स(ष?) [प०७१,पा०२] बहुले प्रश्ने वल्ली । ङ ञ ण न माक्षरबहुले प्रश्ने तेषामेवान्यतमे धातुस्वरान्यतमयुक्ते तेषामेवान्यतमव्या(स्या)मतो वाऽनन्तरमवस्थिते धातुस्वरे तृण ज्ञेयम् । धातुस्वराः उ ऊ अ । घ झ ढ बहुले प्रश्ने घ झ ढा नामेकस्मिंश्चतुर्थ(र्थे)नाष्टमेन द्वादसे(शे)न वा स्वरेण युक्ते घ झ ढा नामेकस्यामतो वाऽनन्तरमवस्थितेन ग(गु)च्छा ज्ञेयाः ॥ १४० ॥

गुम्मा य ध भ व हे सुं, ग ज डे वलया हु णवम-तइएसुं ।
सत्तमसरे तह ओ[सहीओ]भणिया द ब [ल] से सुं ॥ १४१ ॥

घ स (भ) व ह बहुले प्रश्ने गुल्मा भवति(न्ति) । ग ज ड [प०७२,पा०१]बहुले प्रश्ने ग ज डा नामेकस्मिन्नवमस्वरेण ओकारेण तृतीयेन उकारेण वा युक्तेन ग ज डा ना त्रयाणामेकस्यामतो वाऽनन्तरमवस्थितेन वलया ज्ञेयाः । वलयग्रहणे च ताल-खजू(र्जू)र-पूगफल-वृक्षादय उच्यन्ते । द ब ल स बहुले प्रश्ने तेषामेवान्यतमेन सप्त[म]स्वरेण एकारेण युक्ते एतेषामेवान्यतम्य(म)-स्यामतो वाऽनन्तरमवस्थितेन सप्त[म]स्वरेण औषधयः प्रत्येतव्याः ॥ १४१ ॥

॥ एवं मूलयोनिः समाप्ता ॥

जीवक्खरेसु मूलं, जीव मूलक्खरेसु(सु) सु(घु)ट्ठेसु ।
मुट्ठीए नायव, धातु [प ७६,ब १] धाउक्ख(क्ख)रेसु य ॥ १४२ ॥

अनया गाथया चोणियाइमा(प्रश्नमे)चमुच्यते । इदानीं प्रश्नेकभागाक्षरयुतेषु जीवाक्षरा-
पेऽभिहता[:] तेषु संख्याधिकेषु मूलं ज्ञेयम् । [मूला]क्षरा येऽभिहतास्तेष्वपि संख्याधिकेषु मुष्टौ
जीवो ज्ञेयः । धात्वक्षरा येऽभिहतास्तेष्वप्यधिकसंख्येषु मु(मु)ष्टौ धातु ज्ञेयम् ॥ १४२ ॥

जीवक्खरेसु मूलं, उत्तरसरसंजुएसु मुट्ठीए ।
अध[र]सहिए[सु] धाउं, जीव च समाणदीहेसु ॥ १४३ ॥

मुष्टौ स्वरसहिता[:] । के ते उत्तरस्वराः ? 'अ इ ए ए' एते स्वराः । त एव जीवा-
क्षर(रैः) युक्ता मुष्टौ मूलं कुर्वन्ति । एते स्वरा धात्वक्षरा अधरस्वरसंयुक्ता मुष्टौ धातु
कुर्वन्ति । कोऽधरो(के तौ अ)धरस्वरौ(रौ) ? । 'आ ऐ' इत्येतौ द्वौ । अन्यो मूल(ल)ते । त
एव जीवाक्षराः समान-दीर्घस्वरैर्युक्ता मुष्टौ जीवं कुर्वन्ति । के ते समानदीर्घाः स्वराः ?
'ई ए(ऐ) औ' इत्येते स्वराः ॥ १४३ ॥ [प १ ब १]

अहरस्सरसंजुत्ता, मूलं धाउक्ख(क्ख)रा उ मुट्ठीए ।
उत्तरसरसंजुत्ते, धाउ धातुक्ख(क्ख)रेसु य ॥ १४४ ॥

धातु(त्व)क्षरा अधरस्वरसंयुक्ता मुष्टौ मूलं कुर्वन्ति । अधरस्वराः 'आ ई[ऐ] औ'
इत्येते स्वराः । धात्वक्षरा उत्तरस्वरयुक्ता मुष्टौ धातुं कुर्वन्ति । के ते स्वराः ? 'अ इ
ए ओ' एते स्वराः ।

"अधरस्वरसंयुक्ता मूलं धात्वक्षरा तु मुष्टौ । जीवं तु अधर धातुं धात्वक्षरे धातुं" ॥
पाठान्तरं वा । गाथा स्वरा एव 'अ इ ए ओ' ॥ १४४ ॥

इदानीं मूलाक्षरेषु भाषि(ष्य)ते । [प ७६,ब १]

अहरस(स्स)रसंजु(जु)त्ते, धाउं मूलक्खरेसु मुट्ठीए ।
उत्तरसहिए मूलं, जीवं सहावदीहेसु ॥ १४५ ॥

अधरस्वरे । के(कौ)तौ ? 'आ ऐ' इत्येतौ द्वौ धातु ज्ञेयं भवति । उत्तर
'अ इ ए ओ' युक्तमूलाक्षरसंहि(हि)तेषु मूलं ज्ञेयम् । मूलाक्षरा मुष्टौ जीवं कुर्वन्ति । के ? समान
दीर्घाः 'ई ऐ औ' इत्येते स्वराः ॥ १४५ ॥

हिट्ठुमि म(अ)भोमत्ते,[प ७७ ब १] धाउं मूलक्खरा उ मुट्ठी(मुट्ठी)ए ।
सेसाणु(ठ) सामनी(णा), करंति(न्ति) मूलक्खरा जीवं ॥ १४६ ॥

मूलाक्षरा अभोमात्रादियुक्ता । का अभोमात्रा ? समानदीर्घस्वरयुक्ताः मुष्टौ जीवं
कुर्वन्ति एवमन्यत्र । शेषाः सर्वमात्राः । काश्च ताः सर्वमात्राः स्वरा एव 'ए ओ(ौ)' एतास्विष-
ठान्ये(ता एव) गृह्यते(न्ते) । "शेषमित्यप्या स्वराः मुष्टौ"मिति वचनमेतत् । धातु-[प ७७ ब १]
जीव-मूलानामन्यतमोऽभिन् एते ग्राम्या निःसूचा वा इत्याद्या नामायतयान्य(न्य)वर्त(र्ते)ता-

भिपातमुद्रया(?) द्रव्यरूपसंज्ञाज्ञानं ज्ञात्वा शेषे प्रपंचधातु-धान्यान्यविकल्पादिकः जीवोत(वस्त)-दवयवो वा द्विपदान्यतमस्य मूल वृक्षगुच्छगुल्मलतादिकं एवं समप्रपंचं विज्ञाय मुष्टौ तथाऽऽ-देशः कार्य इति ॥ १४६ ॥

॥ मुष्टिविभागप्रकरणं समाप्तम् ॥

दो दीह वट्टदीहा, वट्टो तंसो य वट्टदीहा वि ।

[अत्र आदर्शे तु 'वट्टो दीहो दि तसो य' एतदग्रो द्वितीयपदस्तो भ्रष्टपाठो दृश्यते ।]

चतुरस्सो वि य वट्टो,[प० ७५,पा० १]होइ तह यायणादि(ता त्रि?)ण्णि॥१४७॥

अकार इकारश्च द्वौ वृत्त(?)दीर्घा । आकारश्च ईकारश्च द्वौ [वृत्त?]दीर्घौ। उकारो वृत्तः । औ(ऊ?)कारस्त्रसः (स्त्र्यस्रः) । एकारश्च ओकारश्च पुनर्द्वौ वृत्तदीर्घौ । ऐकार औकारश्च दीर्घौ। अंकार अः सविसर्गः दीर्घचतुरस्रे(स्रौ) । मतान्तरेण धनुरावेवा (चतुरस्रावेव) । एतेषां मध्ये यस्य बाहुल्य तेन तज्ज्ञानीयम् । पूर्वनिर्दिष्टा दीर्घा विज्ञेय(याः) ॥ १४७ ॥

दीह(हा) वट्टा तंसा, चतुरंसा आप(य?)दा य संठाणे ।

क-खमादिणो य वग्गा, मीसामीसेसु [प० ७५,पा० २] नायवा ॥ १४८ ॥

क च ट त प य शाः सप्त दीर्घा. । ख छ ठ थ फ र षाः सप्त वृत्ताः । ग ज ड द ब ल साः सप्त त्रसा(त्र्यस्राः) । घ झ ढ [ध] भ व हाः सप्त चतुरस्राः । ङ ञ ण न माः पंच दीर्घचतुरस्राः । प्रश्नाक्षराणा मध्ये यस्याक्षरबाहुल्यं भवति तेन तद्[व]स्तु निर्देशः(श्यम्) । वृत्तदीर्घाक्षरस्तु यदि बाहुल्येन दृश्यते तदा वृत्तदीर्घवस्तु निर्देश्यः(श्यम्) । एवमन्येऽपि मिश्रा ज्ञेयाः ॥ १४८ ॥

पढम-तइया य छि[प० ७६,पा० १]द्दा, सीया य घणोसिणा अ पि(त्रि) चउत्था।

पंचमओ पुण वग्गो, होतिदोसु (उण्होछिद्दो?) या(य वा?) मीसो ॥१४९॥

प्रथमवर्गस्तृतीयवर्गश्च, एतौ द्वौ छिद्रौ क-गादिकौ सी(शी)तौ च । द्वितीय-चतुर्थौ ख-घादिकौ घनौ उष्णौ च । पञ्चमो वर्ग उष्णो घनछिद्रः । प्रश्ने एतेषां येन बाहुल्यं तेन निर्देश[ः]कार्यः ॥ १४९ ॥

दो सेया धूमलओ, रत्तो चित्तो य किण्हवण्णो य ।

ये उ(ए ओ) य पुणो सेओ, दो नीला पीयला [प० ७६,पा० २] चरिमा॥१५०॥

अकार इकारश्च द्वौ स्वरौ श्वेतौ । आकारो धूम्रः । ईकारो लोहितः । उकारश्चित्रलः । ऊकारः कृष्णः । एकार ओकारश्च द्वौ श्वेतौ । ऐकारो नीलः । औकारो(रः)पीत(?नी)लः । एव अं अः पीतौ । प्रश्ने एतेषां मध्ये यदा(द)क्षरबाहुल्य भवति तेन वर्णनिर्देश[ः] कार्यः ॥ १५० ॥

सेदा किन्हा रत्ता, नीला तध पीयला य वण्णेण ।

कखमादीओ वग्गा, मीसा मीसेसु णायवा ॥ १५१ ॥

कादिवर्गः श्वेतः । खादिवर्गः कृष्णः । गादिवर्गो रक्तः । घादिवर्गो नीलः । ङ ञ ण न माः पीतलाः । एतेपा यस्याक्षर बाहु[प० ७७,पा० १]ल्यं प्रश्ने [तस्य वर्ण]निर्देशः कार्यः॥१५१॥

सुरभी मंधो सुरभि(भी), मदो सुग(दुग्ग)धिया तहा दोण्णि ।
सुरभी मदो सुरभी, [मदो] दुग्गधियो सुरभी ॥ १५२ ॥

अकारः सुरभिः । आकार ईषत्सुरभिः । इकारः सुरभिः । ईकार ईषत्सुरभिः । उऊ द्वौ दुर्गंधी । एकारः सुरभिः । ऐकारोऽल्पसुरभिः । ओकारः सुरभिः । औकारोऽल्पसुरभिः । अं दुर्गंधिः । [अः सुरभिः] । प्रभावराणां मध्ये सुर्गधिवराबाहुल्यं भवति तदा सुगंधकुसुमादिकं ज्ञेयम् । दुर्गंधारबे(धीप्से)नमेव ॥ १५० ॥

सुरभी क-गादिवग्गो, गगा(ग-जा)दिवग्गो य तह य नायवो ।
सेसा [प ७० प १] तिण्णि वि वग्गा, दुग्गधिवं(धे)जणा होंति ॥ १५३ ॥

क-गादि[ग-जादि]वर्गौ द्वौ सुरभी । शेषवर्णत्रयं च-यादि दुर्गंधि । प्रश्ने एतेषां बाहुल्ये पूर्व[व]त् सुगंधादयो ज्ञेयाः ॥ १५३ ॥

एतस्मिन्नेवार्थे [illegible] गाथा लिख्यन्ते । तद्यथा—

दो वग्गा(ग्गा) दो सीहर [दो संता दो य होंति एक]वेसा । दोण्णि य होंति विसेसा दो वह [illegible] ॥
"अ इ" [illegible] "आ ई" [illegible] "ए ए" [illegible] "अ ई" [illegible] ।
[illegible] । "अं अः" [illegible] ॥ १ ॥ [प ७४ प १]
[illegible] ॥ २ ॥
[illegible] ।[illegible]
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] [प ७४ प २] [illegible] । [illegible]
[illegible] ॥ [illegible]
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] [प ७५ प १] [illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ [illegible] ॥

पढमो णवमो य सरो, क-गादिवग्गो य तीय स[हु]ओ [य] ।
फुस(फ्फ)स छुवस्सा य घसार(स-भारी), विविधस्सम वा[रस]सरो य॥१५४॥

प्रथमस्वरः अकारः । न(प)वम ओकारः । (क-गा)दिवर्णौ— [illegible] सी(छी)वा [illegible] । [illegible] । द्वितीयस्वर आकारः । दशम औकारः । द्वादशो अकारः सविसर्गः । एते वर्णा(म) [illegible] । एषा-[illegible] प्रश्ने [illegible] [प ७५ प २] [illegible] सी(छी)तादिकं वाच्यम् ॥ १५४॥

तइओ [य] सत्तस(म)सरो, कमा(गा)दिवग्गो य मि(नि)द्धनिद्धाओ ।
लुक्खा उण्हा गरुया, खघा सरा य चउरट्ठमा दि(दो)ण्णि ॥ १५५ ॥

तृतीयः स्वर इकारः, सप्तम एकारः, ख(क)गादिवर्गौ च द्वौ । एतेषां बाहुल्ये स्निग्ध-द्रव्यमादेश्यम् । ख[घा]दिवर्गः, चतुर्थस्वर इकारः, अष्टम ऐकारः । एते रूक्षाः उष्णा [गुरुकाः ।] एतदक्षरस्वरबाहुल्येन तद्भवति ॥ १५५ ॥

धातुस्सरा य दोण्णि वि, पंचम(य?) अणुणासिया मउअ सीदा ।
वामिस्सा पुण सव्वे, मिस्सामिस्सा मुणेयव्वा ॥ १५६ ॥

धातुस्वरौ 'उ ऊ', पञ्चानुनासिकाः, मृदवः सी(शी)तलाश्च । स्नि[ग्ध]रूक्षाक्षरै[:] नास्निग्धो न(ना?)रूक्षो(क्ष) आदेश्यः । मृदु-कर्कसा(शा)क्षरेन(ण?) मृदु-कर्कसो(श) आदेश्यः । [प० ८०, पा० १] उष्ण-सी(शी)ताक्षरै[:] न उष्णो न सी(शी)त आदेश्यः । यथोक्ताक्षरबाहुल्येनैतद् भवति ॥ १५६ ॥

तित्तो कडुय कसाओ, अंघो(बो) महुरो य आणुपुव्वीए ।
को(का)दीणं वग्गाणं, सरपरिमाणं(णो) मुणेयव्वो ॥ १५७ ॥

कादिवर्गो तिक्तः । गादिवर्गो(र्गः) कटुकः । खादिवर्गः कषायः । घादिरम्लः । ङादि-वर्गो मधुरः । अनयोरानुपूर्व्या यथोक्तवर्गोऽक्षरबाहुल्ये स(स्वर)परिणामो(माणो) वाच्यः । एव वर्गाणां स्वराणां संस्थान च ॥ १५७ ॥

॥ वर्ण-रस-गंध-स्पर्शप्रकरणं समाप्तम् ॥

बितिय चउत्थो य सरो, पढमो अणुणासिओ चघज(क ख ग)घा य ।
एते व(अ)ग्गेईए, अकगा........पुव्वदा तिण्णि ॥ १५८ ॥

'च(क) ख ज(ग) घ ङ(ङ)' इत्येषां पंचानां अन्यतमबाहुल्ये अ(आ)कारेण इ(ई)कारेण वा युक्ते एतै[प० ८०, पा० २]पाममतो वाऽनन्तरमवस्थिते आकारेण इ(ई)कारेण वा अग्नेयां(य्या) दिशितद् वस्तु विज्ञेयम् । अकगाक्षरबाहुल्ये अकारेण इकारे[ण वा युक्ते]प्रश्ने पूर्वस्यां दिसि(शि) तद् वस्तु विज्ञेयम् १५८ ॥

ट छ ड(च छ ज)झ तइओ य सरो, बितिओ अणुणासिओ य जम्माए ।
अट्ठमसरो प(थ) ट ठ ड ढ, हवंति णं(ण)कारो य णिरईए ॥ १५९ ॥

ट छ ड(च छ ज) झाश्चत्वारोऽक्षराः, तृतीयस्वरः इकारः, द्वितीयानुनासिकश्च अ(ञ)कारः । एतैः पूर्वोक्तन्यायेन याम्यायां दिशि तद् वस्तु विज्ञेयम् । अष्टमस्वर ऐकारः, त(ट) ठ ड ढा श्चत्वारोऽक्षराः, [प० ८१, पा० १]णकारस्य(श्च) । एभिनैरु(र्नैर्ऋ)त्यां दिसि(शि) द्रव्यं से(ज्ञे)यं पूर्वोक्तन्यायेनेति ॥ १५९ ॥

अघरेण सत्तमसरो, चउत्थ अणुणासिओ अ प व(त थ द)धा य ।
दसमसरो सप(म)कारो, अधरुत्तरतो फ भ मा(प फ ब भा) य ॥ १६० ॥

पचवचाच(तचवचम)युक्ते प्रश्ने एतेषामेवाभ्यन्तरसमासतो ओ(ए)कारेण युते एतासेवाभ्यन्तरसमासतो बाऽभ्यन्तरसमभिहितेन एकारेण पश्चिमायां दिशि(शि) द्रव्यं ज्ञेयम् । पचछब(पचचचम)युक्ते प्रश्ने एतेषामेवाभ्यन्तरसमासतो बाऽभ्यन्तरसमभिहिते[न] औकारेण वायव्यां ज्ञेया(यम्) ॥ १६ ॥

चाउत्तर[प ४१ पा २]रा य सच इ(ता), णायवा तह य उत्तरद(दि)साए।
चरिमो णवम्मे(मो)य सरो, ईसाणीए स र पा(य र ला?)य ॥ १६१ ॥

चतुरक्षरी द्वौ चउ, सच हा च वर्णोऽक्षराः, एभिः पूर्वोक्तन्यायेन उत्तरस्यां दिशि द्रव्यं ज्ञेयम् । चरिमो द्वौ औ अः । नवमस्वर ओकारः । चरपा(चरला?)च वर्णोऽक्षराः । एभिः पूर्वोक्तप्रकारेण ऐशान्यां दिशि द्रव्यं ज्ञेयम् । एवं सकल द्रव्यं ज्ञेयम् ॥ १६१ ॥

॥ त्रिपदादे(दि)द्रव्यस्य दिशि(शा)[प ४२ पा १]प्रकरणं समाप्तम् ॥

उत्तरसरेसु गामे, आणे अहरेसु बाहिरओ [य] ।
उत्तरसरसंजुत्ते, गेहे अहरक्खरेसुं च ॥ १६२ ॥

उत्तराक्षरेषूत्तरस्वरयुक्तेषु यत्किञ्चित् ग्र(म)थ्य म(व)स्तुनि ग्रामे वर्तत इति ज्ञेयम् । एवं बाहुल्ये । उत्तराक्षराश्च पूर्वोक्ता एव । अधरस्वरसंयुक्तेषूत्तराक्षरेषु यदेषु यत्किञ्चित् पृच्छति ता(ग्रा)मवाह्यमिति वक्तव्यम् । एवमेव बाहुल्येन । उत्तरस्वरयुक्तेष्वधराक्षरे[प ४२ पा १]षु यत्किञ्चित् पृच्छति कश्चि[त्]गृहे ज्ञेयं पूर्वोक्ता(क्ता)नेन । उत्तराक्षराश्च पूर्वोक्ताः ॥ १६२ ॥

उत्तरसरसंजुत्ते, अहरे तं चेव होइ सयणघरे ।
परवग्गाहए वग्गे, असयणअम्मो हवइ दव्वं ॥ १६३ ॥

उत्तरस्वरसंयुक्ते अधराक्षरे जानीहि स्वजनगृहे द्रव्यम् । परवर्गाहते वर्गे द्रव्यं परगृहे भवतीत्याचेत्यम् । आलिङ्गितादिभूमिवत्प्रश्नमेवे वर्णोऽभिहितश्च । चवेदे वर्गो [प ४२ पा १] अभिहतश्च यथा पूर्वोक्तन्यायो(यो)ऽस्मिति ॥ १६३ ॥

आणे सकारंय(काय)गरुए, अप(प्प)णगेहम्मि ठवियय(ठावियं) दव्वं ।
परवग्गाभिहयम्मि, सयणग(गि)हे हों(हो)ति त दव्व ॥ १६४ ॥

तत्र स्वजनगृहस्वर्गो[प ४२ प २]ऽत्र यो भवति । [illegible] इत्यादि । एतद्युक्ते प्रश्ने स्वगृहे द्रव्यम् । परवर्गेर्युक्तमिव(त)मितैः स्वजनगृहे द्रव्यम् ॥ १६४ ॥

पढमे चरमे [य] सरे, दिट्ठे वत्थू य हों(हो)ति पुणेण ।
बितियसरे य मज्झगे, अग्गेईए हवइ वत्थू ॥ १६५ ॥

स्वगृहे परगृहेऽरण्ये वा मध्यम् । पुरा(?) प्रथमस्वरो अकारः, अ[:]कारो द्वादशस्वर[वि]सर्गः । आभ्यां मिश्रयोः प्रश्ने यत्किञ्चित् पृच्छति तद् प्राग्गृहस्थाने पूर्वेण ज्ञेयम् । द्वितीयस्वरे आकारे कवर्गाक्षरस्योपरिगतेऽप्रतो बाऽभ्यन्तरसमभिहिते यत्किञ्चित् पृच्छति कश्चित् स्वाभ्यन्तरे पूर्वा[प ४४ पा १]ग्निकोणदिशाग्नेय्यां द्रव्यम् ॥ १६५ ॥

तइए णवमे य सरे, तइए वग्गे हवइ जम्माए ।
ईकारेकारंमि य, चउत्थवग्गे य निरईए ॥ १६६ ॥

तृतीयवर्गेश्चकार(रः), तस्योपरिगतेन तृतीयस्वरेण इकारेण णवमस[रेण] ओकारेण वा चकारस्य वाऽग्रतोऽनंतरमवस्थितेन द्वयोरन्यतरेण दृष्टेन यत्किंचित् पृच्छति तद्गृहस्याभ्यन्तरे दक्षिणस्या दिसि(शि) ज्ञेयम् । चतुर्थवर्गटकारस्योपरिगते[न] ईकारेण ए(ऐ)कारेण वा टकारस्याग्रतो वाऽनन्तरमवस्थितेन स्वरद्वयस्याभ्यन्तरेण दृष्टेन यत्किंचित् पृच्छति तद्गृहस्याभ्यन्तरे नैरइस्या(नैर्ऋत्या) दिसि(शि)[प० ८४,पा० २] ज्ञेयम् ॥ १६६ ॥

एकार सत्तस(म)सरे, पंचमवग्गे य वारुणीए उ ।
छट्ठे दसमसरे [वा], वायव्वाए उ णायव्वं ॥ १६७ ॥

एकादश स्वरः अ, सप्तम एकारः, ताभ्यां तकारयुक्तस्यामतो वाऽनन्तरमवस्थितेन उभयतः स्थिताभ्यां वा वारुण्या द्रव्यं ज्ञेयम् । तथा षष्ठे वर्गे पकारे दशमस्वरेण युक्तेऽग्रतो वाऽनन्तरमवस्थिते वायव्या [प० ८५,पा० १] दिशि द्रव्यं ज्ञेयम् ॥ १६७ ॥

पंचमरसे(सरे) य वग्गे, सत्तमए हवति सत्तमदिसाए ।
अट्ठमवग्गे छट्ठ[ट्ठे], सरे य ईसाणिए जाण ॥ १६८ ॥

सप्तमवर्गस्या(स्य) यकारस्याधोगते उकारे यकारस्योपरिगते वाऽनन्तरमवस्थिते यत्किंचित् पृच्छति तद् गृहस्याभ्यन्तरे सौम्यां(सौम्यायां) दिशि द्रव्य ज्ञेयम् । अष्टमवर्ग[स्य]सकारस्याधोगतौ(ते) षष्ठस्वर ऊकारः(रे)[प० ८५,पा० २] सकारस्यानन्तरमवस्थिते पृच्छकस्य तद्गृहाभ्यन्तरे ऐशान्यां दिसि(शि) द्रव्यं ज्ञेयम् ॥ १६८ ॥

अट्ठसरा आइल्ला, अट्ठ य वग्गा य आणुपुव्वीए ।
इंदाणीण दिसाणं, कमसो वग्गेसु पविभत्ता ॥ १६९ ॥

उक्तार्थे(र्थे)व गाथाऽनन्तरप्रपञ्चेन ॥ १६९ ॥

सव्वे सट्ठाणाओ, सप(प्प)डिहता हवंति चउत्थाओ ।
उत्तर अह(हो) सवण्णा, हसंति पुव्वावरं वग्गं ॥ १७० ॥

प्रश्नाया पूर्व(र्व)दिगृ(ग)क्षरसन्मिश्रैः पश्चिमदिगक्षरैस्तुल्यैर्द्वयोरपि दिशोन्म(र्म)ध्ये द्रव्यमादेश्यम् । यदि पूर्वदिगा(ग)क्ष[प० ८६,पा० १]राणा बाहुल्य तदा पूर्वस्या(स्या) दिति(शि) । पश्चिमदिगा(ग)क्षराणा बाहुल्य तदा पश्चिमादिक्समीपे द्रव्यमादेश्यम् । दक्षिणदिगा(ग)क्षरैरुत्तरदिगा(ग)क्षरसन्मिश्रैस्तुल्येयु(ल्यैर्द्व)योरपि दिशोरनयोम(र्म)ध्ये द्रव्यं ज्ञेयम् । दक्षिणदिगक्षराणां बाहुल्ये दक्षिणदिक्समीपे द्रव्यमवतिष्ठति । पूर्वदिगक्षरैराग्नेयादिगक्षरैः सन्मिश्रैम(र्म)ध्ये द्वयोरपि दिग्विद(दि)शोरन्तराले द्रव्य तिष्ठतीति वक्तव्यम् । पूर्वदिगक्षराणा बाहुल्ये पूर्वस्या दिसि(शि) समी[प० ८६,पा० २]पे द्रव्य तिष्ठतीति आदेश्यम् । आग्नेयाक्षरबाहुल्ये आग्नेयाया दिशि समीपे द्रव्यं तिष्ठतीति विज्ञेयम् । दक्षिणदिगा(ग)क्षरैराग्नेयादिगा(ग)क्षरमिश्रैस्तुल्यैर्दक्षिणस्या

सिसि(ति) द्रव्यम् । कार्येवार्तां च मध्ये द्रव्यमादेशयम् । यदा द्वयोरन्त्ययोर्वि(र्वि)भिविस्रोत(र्व)-द्वयपरिपन्थे षष्ठे यदा तस्य(स्याः) समीपे द्रव्यमादेशयम् । पश्चिमदिग्वर्गैरनैव(नैवं)ताक्षरमिवै-स्तुस्थयोद्व(ई)योरन्त्ययोर्वि(र्वि)गुणिविद्योरन्तराले द्रव्यमपठिष्यत् इसर्ग[प० ८० व १]देशयम् । द्वयोरन्त्ययोर्विभिविद्योर्वैभ प्रथमाक्षराभिघ्न्या[द्] प्रथमपिका(के) तस्याः समीपे द्रव्यं ज्ञेयम् । पश्चिमदिग्वर्गैरनैव(र्विनं)ताक्षरमिवैस्तुल्यो(ई)योरन्त्ययोर्वि(र्वि)गुणिविद्योर्मध्ये द्रव्यं वक्तव्यम् । यदा द्वयोरन्त्ययोर्विगुणिविद्योरेकत्र [त]थाक्षराभिघ्नाद् प्रथमपिके यदा तस्य[स्याः] समीपे द्रव्यं ज्ञेयम् । पश्चिमदिग्वर्गैरपि(र्गि)भेस्तुल्ये(ल्यौ)रन्त्ययोर्विभिविद्योर्मध्ये द्रव्यमादेशयम् । यदा द्वयोरन्त्ययोर्वि(र्वि)भिविद्यो(द्यो)रेका विसो विविसो चाऽक्षर[प० ७ व १]राभिघ्नाद् प्रथमपिके यदा तस्याः समीपे द्रव्यमादेशयम् । उत्तरदिग्वर्गैरपा(र्गो)भ्याविभक्तरमिवैस्तुल्येरन्त्ययोर्विभिविद्योर्मध्ये अन-विष्टे द्रव्यमिस्मादेशयम् । यदा द्वयोरन्त्ययोर्वि(र्वि)गिविसो(द्यो) चाक्षराभिघ्नाद् [प० ८ व १] प्रथमपिके यदा तस्याः समीपे द्रव्यं विष्ठीनादेशयम् । उत्तरदिग्वर्गैरपीडा(पीडा)भ्याक्षरमिवैः स्तुल्येरन्त्ययोर्विभिविद्योर्मध्ये द्रव्यमपविष्ठीनादेशयम् । यदा द्वयोरन्त्ययोर्वि(र्वि)भिविसो(द्यो)-[रेका विसो विविसो]चाऽक्षराभिघ्नाद् वर्ग[प० ८ व १]प्रथिके यदा तस्य(स्याः) समीपे द्रव्यमादेशयम् । पूर्वदिग्वर्गैरेका(र्गा)भ्याक्षरमिवैस्तुल्येरन्त्ययोर्विगिविद्योर्मध्ये द्रव्यमपविष्ठ द्रव्या-देशयम् । यदा द्वयोरन्त्ययोर्वि(र्वि)भिविद्योरेका विसो विविसो चाऽक्षराभिघ्नाद् प्रथमपिके यदा तस्या निकटे द्रव्यं वक्तव्यम् । [प० ८६ व १] पूर्वदिग्वर्गैरव(ई)भ्याक्षरमिवैस्तुल्येरन्त्ययो-र्विगुणिविद्योर्मध्ये द्रव्यमादेशयम् । यदा द्वयोरन्त्ययोर्विद्योरेका चाक्षराभिघ्नाद् प्रथमपिके यदा तस्या निकटे द्रव्यमादेशयम् । अनाक्षराणां मध्ये उपविष्टविभिविद्या(विदिग)क्षरानुस्नेनैवो-भि(ी)मादेशय(का) योज्या ॥ १७० ॥ [प० ८९ व १]

बितिय चउत्थे वग्गो, समि(म्मि)तर-बाहिरं भवे गेहं ।
अथरसरेसु(सु) य प(ष)हिया, अथरस(स्स)रसतु(सु)गेहु च ॥ १७१ ॥

द्वितीयवर्गो—ख छ ठ थ फ र ष का [ख्ये] । एतद्गणके प्रश्ने बहिर(र्व)त[र्] द्रव्यं ज्ञेयम् । चतुर्थवर्ग(र्गे)—घ झ ढ ध भ व ह दृश्येते भ्यन्तरापाः । एतद्गणके प्रश्ने गृहाभ्यन्तरे द्रव्यं ज्ञेयमिति । द्वितीय-चतुर्थवर्गाक्षरगणके प्रश्ने बहि(र्व)राभ्यन्तरे द्रव्यं ज्ञेयम् । अक्षर-स्वरेष्वपि(ष्वि)त्यपमेवार्थः ॥ १७१ ॥

सण्णिहम्मि य जं दव्वं, त पत्थ[प० १ व १]स्स भवे परोक्खं वा ।
दिट्ठ(ट्ठे)मि परोक्ख(क्खे)मि ओ(उ), उड्ढ(ड्ढ)महो तिरियभागे वा ॥१७२ ॥

कथ्यते यं (यद्)द्रव्यं कामितं पदं च यत् प्रत्यक्षं च परोक्षं यदि सम्यक्परिलक्षयं । आलिङ्गितचतुर्थवर्गगणके प्रश्ने कर्म तथा कामितमिति यत्र वाच्यम् । अभिधूमितयोगपदेश्वो(र्वि)-दग्धाक्षर(मिश्र स्वराक्ष)रिविघ्नेनैवेत्यादिभिः कामित द्रव्यमिति वाच्यम् । अर्ध(र्घ)मात्र(मा)क्षरे-ष(र्दे)षु विचारे कामितमितिवाच्यम् । यथा(य)भ्यामितिर्विके कामितं द्रव्यं तत्रो[प० १ व २] नष्टमिव विकटे । अर्धमात्रेऽपोखा(खा)मो निर्गमाये वा द्रव्यमालिङ्गितधरिवत्या वाच्या निर्देश(र्श) वदत(न्त)ि ॥ १७२ ॥

मूलस(स्स)रेसु उट्ठं(ड्ढं), अहो [य] धातुस्सरेय(सु) सव्वेसु ।
सेसेसु तिरि[य]भागे, गेहे दत्थं(व्वं) तु[ह?] परोक्खं ॥ १७३ ॥

मूलस्वराः 'ई ऐ औ' एतेषु दृष्टेषु प्रश्ने ऊर्द्ध्वभागे द्रव्य तिष्ठतीत्यादेश्यम् । धात्यधातुस्वरौ द्वौ 'उ ऊ' आभ्यां दृष्टाभ्या अधोभागे द्रव्य तिष्ठतीत्यादेश्यम् । शेषेषु—'अ आ इ ए ओ' एषा पञ्चाना अन्यतमाधिक्ये तिर्यग्भागे द्रव्यमवतिष्ठत इत्यादेश्यम् । स्वगृहे संचयं द्रव्यं नष्ट तदेभिः स्वरै[प० ९१, पा० १]ज्ञा(र्ज्ञा)तव्यमिति ॥ १७३ ॥

जल देवय अग्गिख(घ)रं, दिट्ठे वत्थुंमि ति[न्नि?] नि(ति)ट्ठाणं ।
लक्खेज्ज जीव धाउं, मूलाण य तिनि(न्नि) वाणइ(ठाणा)इं ॥ १७४ ॥

क च ट त प य सा(शा)[नाम]न्यतमाधिके प्रश्ने जलगृहे द्रव्यमादेश्यम् । ख छ ठ थ फ र षा णा चतुर्थवर्गसंज्ञकाना चान्यतमाधिके प्रश्ने गोशालायां द्रव्यमिति ज्ञेयम् । ग ज ड द य ल सा नामन्यतमाधिके प्रश्ने देवगृहे द्रव्यमादेश्यम् । ङ ञ ण न माधिके प्रश्ने अग्निगृहे द्रव्यमवतिष्ठत इत्यादेश्यम् । मिश्रेषु यत्सवर्धिनोऽक्षरा बहव[:] तस्मिन् द्रव्यमिति ज्ञेयम् । जीवयोनौ लब्धाया जीवो नष्टमि(ष्ट इ)त्यादेश्यः । मूलयोनौ लब्धे मूलम्, धातुयोनौ लब्धे धा[प० ९१, पा० २]तुद्रव्यम(व्यं न)ष्टमित्यादेश्यम् । तच त्रिस्वे(ष्वे)व स्थानेष्विति नष्टिकास्वगृहकाण्डम् ॥ १७४ ॥

छिद्दे तत्थंरिपं(रत्थंतरियं?), परवकु(त्थु)मणंतरं घणे दिट्ठे ।
जो च्चिय वत्थु निवेसे, गमओ सो चेव रत्थासु ॥ १७५ ॥

क-गादीना प्रथम-तृतीयवर्गीयाना छिद्रसञ्ज्ञकाना अन्यतमाक्षराधिके प्रश्ने रथ्यान्तरितं द्रव्यमादेश्यम् । ख-घादीना वर्गाक्षराणा घनसञ्ज्ञ[प० ९२, पा० १]काना अन्यतमाधिकाना प्रश्ने स्वगृहस्यानन्तर यत्परगृह [तस्मिन्]द्रव्यमित्यादेश्यम् । एवं [व]स्तुनिवेशविधिरुक्त· । पूर्वाऽऽग्नेयी दक्षिणे(णा) नै(र्ऋ)त्यपरा वायव्योत्तरेशानी चेति [दिक्] । यैरक्षरैगृ(गृ)हाभ्यन्तरे एतासु दिक्षु द्रव्यसम्हित तैरेवाक्षरैस्तेनैव प्रकारेण रथ्यास्वपि द्रष्टव्यम् ॥ १७५ ॥

हस्सेसु समं ठाणं, सहावदीहे[प० ९२, पा० २]सु उण्णयं जाणे ।
पंचम छट्ठे य सरे, दोसु वि ण्णि(णि)ण्णं मुणेयव्वं ॥ १७६ ॥

ह्रस्वानां 'अ इ ए ओ' एतेषामन्यतमाधिके प्रश्ने समस्थाने द्रव्य तिष्ठतीत्यादेश्यम् । स्वभावदीर्घाणां '[ऊ ऐ]औ' एषामन्यतमाधिके प्रश्ने उन्नते भूभागे द्रव्यमवतिष्ठत इति वाच्यम् । पञ्चमस्वर[उकारः], पष्ठस्वर ऊकारः, अनयोर्दृष्टयोर्नि(र्नि)म्नोन्नतभूभागे द्रव्य तिष्ठतीत्यादेश्यम् ॥ १७६ ॥

ततियस्सरो वि रत्थं, कवे(थे)ति जइ वंजा[प० ९३, पा० १]णे य संजुत्तो ।
उत्तर-वंजणसहिते, त्रितिए उच्चं हवइ ठाणं ॥ १७७ ॥

तृतीयस्वर इकारः, स वक्ष्यमाणमात्रोपेतो रथ्यायां द्रम्ममात्रे । द्वितीयस्वर आकारः, सोऽस्मिंल्लोकोत्तराक्षर(रो)पमसंयुक्ते रथ्यायामेव द्रम्मं कथयति ॥ १७७ ॥

सविसग्गेसु पढक्ख, साणुस्सारेसु अघरत्तरठाणं ।
लोइय-लोउत्तरिय, घणक्खरे देउल लक्खे ॥ १७८ ॥

सविसर्गः 'अ'कारः स यदा प्रश्ने प्रश्नमात्राक्षरपार्श्वे[प १३,प २]तो दक्षे देवको वा यदा चतुष्पथे द्रम्ममात्रेऽयम् । एकारप्रश्नोऽनुस्वारः 'अं' यदाऽन्यतममात्रोपेतो दक्षे देवको वा यदा तदा चतुष्पथस्य पश्चिमदिग्भागे द्रम्मवर्तित इत्यादेयम् । घनाक्षराणां 'क ए ठ त क र दा नां, ब ह क ब म ब हा नां' बाह्याभ्यन्तरे देवकुले लौकिकदेवकुले द्रम्ममात्रेऽयम् । [प १४ प० १] लौकिकं देवकुलं सकराक्षनादिकम् । एतेष्वेव घनाक्षरैरुत्तराक्षरसंयुक्तेषु लोको-त्तरदेवकुले द्रम्ममात्रेऽयम् । लौकिकोत्तरिकदेवकुले(ऽ)मिताईतापर्नं वक्तव्यम् ॥ १७८ ॥

सवत्थ [य] जीव-धातु-मूलाण उक्खए सउद्दु(मो ठा)णा ।
एसो य गामवढो, एसो वि य बाहिरो दवो ॥ १७९ ॥

सर्वत्र जीव-धातु-मूलानां क्षेत्रत्वाद्[प १४ प २]न गढलोके तद जीव(वे) धातु(तौ) मूलं वेति क्वचन(मि)मावकार्यमेव कार्यं इति । तत्र तत्र ग्रामे एव दंडो बहिरभ्यन्तरे च भाव लोकः । ईदृक्प्रश्नेन च तां वा(ब)न्नमुच्यते ॥ १७९ ॥

॥ नष्टिको(का)धर्म समाप्तम् ॥

एदो(यो) चिंतविभागो, बुद्धिविसेसेण अक्खरप्पभवो ।
गेहिरिला(गहरिक्खा)णं सूया,सबेसिं उवगयविसेसो ॥ १८० ॥

अतः परं चिन्तावि[प १५,प १]भागःबुद्धिविशेषस्य महतां नक्षत्राणां च सूचकं विशे-(शे)षेण अक्षरसमुत्पन्नविभवैर्न ज्ञातव्योऽस्मार्गं च सूक्ष्मा महति(वि)ष्णानां च सर्वेषा-(म्पां)मुपगतविशेषमिति वा(त्वा)भावोपमान्यायार्थमा(तां) । सर्वता अर्थमप्रसर्पवोचः ॥१८०॥

तह सहणिण्णओ वि[य], सवे भावा य सव्वसत्ताणं ।
णंदावत्ते जोए, सत्त वियप्पा [प १५,प २] हवंति इमे ॥ १८१ ॥

पदार्थकल्पेतित-इत्यप्यस्माभिरपसो भावप्रश्नेन भिन(र्ण)यवर्जाद्विप्रमाणादीनि अभ्यन्ते । सर्वभावा अक्षरप्रतिबद्धाः 'लाभालाभ-सुखदुःख-जीवितमरण' इत्यादयश्प्रतिबद्धाः । सत्त्व-द्रव्याणां नन्दिकावर्तयोगे(गे) कल्पे सप्त भेदा भवन्तीति वक्ष्यमाणोपन्यासः ॥ १८१ ॥

तथा चैतत्–

पढमो चिंताभेदो, तस्स य भेया हवंति अट्ठ इमे ।
जीवादीण जोणी, तिविहो पढमो हवति भेदो ॥ १८२ ॥

तेषां सप्तानां भेदाना [प० ९६,पा० १] मध्ये प्रथमचि(श्चि)न्ताभेदः । तस्य भेदा भवन्त्यष्टौ वक्ष्यमाणाः । जीव-धातु-मूलाना योनिस्त्रिविधा या सा प्रथमचिन्ताभेदे पतति ॥ १८२ ॥

गुरु-लहुय अक्खराणं, संजोओ वितियओ हवंते(वंति) भेदो ।
तितीओ पीडासद्धि(हि)ओ, ततो(त्तो) अभिघातिता तिन्नि ॥ १८३ ॥

गुरु-लघ्वक्षराणा सयोगो द्वितीयो भेदः। पीडाभेदस्तृतीयकः । क(कः) पुनरसौ ? अधा-(धो)मात्रा अप्रधाना येऽभिहता· रेफ-यकार-उकार-ऊकार-सहिताः । आलिंगितश्चतुर्थः । अभिधूमितः पचमः । दग्धः पष्ठो भेद [प० ९६,पा० २] इति ॥ १८३ ॥

एक्को पयडिविसेसो, सत्तमओ संकडाइ अट्ठमओ ।
एत्तो चिंताभेदा, पणयालीअक्खरुप(प्प)ण्णा ॥ १८४ ॥

एकः प्र[कृ]तिविशेषकः । कु(कः)पुनरसौ ? जीवप्रकृति-धातुप्रकृति-मूलप्रकृति[रूपः] ॥ सप्तमो भेदः । सकट-विकटभेदा(दो)ऽष्टम उक्त एव । एते चिन्ताभेदाः पचचत्वारिंशदक्षरप्रतिवद्धा इति ॥ १८४ ॥

॥ चिन्ताभेदप्रकरणं समासम् ॥ [प० ९७,पा० १]

दुग दुग तिग तिग य चतू, चतुक्क पण पण छ सत्त वसु णवया ।
णामक्खराण य सरा, हवं(हों)ति आ(अ)कारादिणं कमसो ॥ १८५ ॥

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अ
२	२	३	३	४	४	५	५	६	७	८	९

अकारो द्विसख्यः । आकारोऽप्य(पि) द्विसंख्य एव । [प० ९७,पा० २] इकारस्त्र(स्त्रि)संख्यः। ईकारोऽपि त्र(त्रि)-सख्या(ख्य) एव । उकारच(श्चतुः)सख्या(ख्यः) । ऊकारश्चतुःसख्या(ख्य) एव । एकार[ः] पञ्च-सख्या(ख्यः।) ऐकारोऽपि पञ्चसख्या(ख्य) एव । ओकार[ः] पट्सख्या(ख्यः) । औकार[ः] सप्तसख्या(ख्यः) । अकारः स्वा(सा)नुस्वरोऽष्टसख्यो(ख्यः)। अकारः सविसर्गो नवसख्या(ख्यः) । अकाराद्य[ः] स्वरा द्वादश अक्षरैर्युक्ता [प० ९८,पा० १] यथोक्तसख्या द्रष्टव्या इति ॥ १८५ ॥

द्वितीयप्रकारः—

चउ ति ति चउक्क चउत्थ, चउ सत्त वयुहण(द्वऽट्ठ णवय)वग्गं च ।
संखापरिमाणे तस(स्स)राणऽगाराइणं कमसो ॥ १८६ ॥
एगादीया पंच उ, कमादी(दि) अणुणासियावसाणाणं ।
कमसो णाम ए(प)माणं, पंचइ(चाण) वि आणुपुव्वीए ॥ १८७ ॥

ककार एकसख्या(ख्यः) । खकार[रो] द्विसख्या(ख्यः) । गकारस्त्र(स्त्रि)संख्या(ख्यः) । घकारचतु(श्चतुः)सख्य[ः] । ङकार[ः] पञ्चसख्य इति । एव क-गादि-ङकारपर्यवसानानां क्रमशः(शः) [प० ९८,पा० २] सख्याऽभिहतेति ॥ १८७ ॥

जो वे(चे)व कवग्गकमो, चाईणं सेसयाण सो चेव।
वग्गाण होइ गमओ, जाव ण केण(णा)वि संजुत्तो ॥ १८८ ॥

य एव संख्यो भवति [क]वर्गस्य क्रम[ः], स एव चादीनां वर्गाणां क्रमो ज्ञेयः। स्वरेणा-
क्षरेण वा असंयुक्तानां अनभिहतानां चेति ॥ १८८ ॥

आवत्तिया संजुत्ता, पत्ते पत्तेसि(यि?) मेलिया संसा।
आलिंगियाइ तत्तो, विसुद्धसेसा हवइ संसा ॥ १८९ ॥

स्वरेणाक्षरेण वा पुत्ते(प्से) वर्णेन वा क्रमशो वाऽऽवर्तसमवकिलेन वा पूर्वापर[ः] स
संयुक्त इत्युच्यते। स संयोगो येन कृता स वर्त[१ ११ प १][illegible], अभिधूम
व(वि)त्वमसमिधूम[व]मि, एवमर्थं वक्ष्यतीति। आलिंगिताभिधूमितदग्धयकादय पूर्वोक्ता।
■ आलिंगिताभिधूमितदग्धानां मध्ये यो(ष्प) मिलते संख्या तां यो(ष्ये)वमिला विशुद्ध(ध्यऽ)वसि
(षि)स संख्या भवति यथा हेत(त्र) कार्ये मनु[ः] वा व[१ ११ प १]मते ॥ १८९ ॥

एक[क] तिय तिय दुय दुय, चतु चतु पण छक्क सत्त वस(सु)इं च।
कमसो अक्खरमाणं, अवग्गओए ककारस्स ॥ १९० ॥

एवं सर्ववर्गेषु ज्ञेयम्। एका [एका] त्र(त्रि)का [त्रिका द्विका द्विका] चतुष्का चतुष्का
■ पञ्चा(च) षट् सप्ताष्टौ अक्षराणिमि करै सविसर्गस्वरवर्णैक्य(क्यै)[illegible]
ककारादीनां अक्षराणां ज्ञेया संख्या क्रमेण यावद् ज्ञातव्य इति ॥ १९ ॥

एमेव(व) [प १ १ ब २] सेसाणं, साएही(ही)णगुणासिय(या)वसाणाणं।
णामपमाण(णं) कमसो, उपरवहीस(ही)र नामवो(चो) ॥ १९१ ॥

एवमेव शेषाणामपि यथा ककारस्य अकारादिवर्णाक्षरसंयोगेन संख्या विहिता तथा
■ खादीनामपि अनुनासिकपर्यन्तानि(नां) प्रमाणानि क्रमशा(शः)। वचो(चो)वरदत्त(स्त्र)
ज्ञातव्यमिति पूर्वगाथायामेव प्रसंगेनोक्तमिति ॥ १९१ ॥

जो (जो) चेव [प १ १ प १] कवग्गकमो, होति उ सो चेव सेसवग्गाणं।
णामपमाण(णं) गमओ, अवग्गओएण निप्फन्नो ॥ १९२ ॥

य एव कवर्गस्य क्रमो भवति स एवासि(यि)क्षानां चादिवर्गाणां अवर्गपर्यन्तानां नाम-
■ प्रमाणे गमवतां अवर्गयोगेन निष्पन्न इति। ककारादीनां स्वराणां इकारादीनां संयुक्तानां च संख्या
सा पूर्वगाथायां प्रसंगेन व्याख्याता ॥ १९२ ॥ [प १ १ ब २]

अह उ अवग्गेण समं, कवग्गमाईण सव(च)वग्गाणं।
एवं चिय संजोगो, परोप(प्प)रं सेसयाणं पि ॥ १९३ ॥

स्पष्टैव गाथा। यथा अवर्गेण सह कवर्गादीनां सप्तानां(सप्तानां) वर्गाणां संयोगे(गः)
■ एव[मेव] परस्परं(रं) चादीनां इकारपर्यन्तानां अक्षराणामपि संयोगो ज्ञेयः ॥ १९३ ॥

क	का	कि	की	कु	कू	के	कै	को	कौ	कं	कः
१	१	३	३	२	२	४	४	५	६	७	८
ख	खा	खि	खी	खु	खू	खे	खै	खो	खौ	खं	खः
२	२	४	४	३	३	५	५	६	७	८	९
ग	गा	गि	गी	गु	गू	गे	गै	गो	गौ	गं	गः
३	३	५	५	४	४	६	६	७	८	९	१०
घ	घा	घि	घी	घु	घू	घे	घै	घो	घौ	घं	घः
४	४	६	६	५	५	७	७	८	९	१०	११
ङ	ङा	ङि	ङी	ङु	ङू	ङे	ङै	ङो	ङौ	ङं	ङः
५	५	७	७	६	६	८	८	९	१०	११	१२
								(१००)			
च	चा	चि	ची	चु	चू	चे	चै	चो	चौ	चं	चः
१	१	३	३	२	२	४	४	५	६	७	८
छ	छा	छि	छी	छु	छू	छे	छै	छो	छौ	छं	छः
२	२	४	४	३	३	५	५	६	७	८	९
ज	जा	जि	जी	जु	जू	जे	जै	जो	जौ	जं	जः
३	३	५	५	४	४	६	६	७	८	९	१०
झ	झा	झि	झी	झु	झू	झे	झै	झो	झौ	झं	झः
४	४	६	६	५	५	७	७	८	९	१०	११
ञ	ञा	ञि	ञी	ञु	ञू	ञे	ञै	ञो	ञौ	ञं	ञः
५	५	७	७	६	६	८	८	९	१०	११	१२
								(१००)			
ट	टा	टि	टी	टु	टू	टे	टै	टो	टौ	टं	टः
१	१	३	३	२	२	४	४	५	६	७	८
ठ	ठा	ठि	ठी	ठु	ठू	ठे	ठै	ठो	ठौ	ठं	ठः
२	२	४	४	३	३	५	५	६	७	८	९
ड	डा	डि	डी	डु	डू	डे	डै	डो	डौ	डं	डः
३	३	५	५	४	४	६	६	७	८	९	१०
ढ	ढा	ढि	ढी	ढु	ढू	ढे	ढै	ढो	ढौ	ढं	ढः
४	४	६	६	५	५	७	७	८	९	१०	११
ण	णा	णि	णी	णु	णू	णे	णै	णो	णौ	णं	णः
५	५	७	७	६	६	८	८	९	१०	११	१२
								(१००)			
त	ता	ति	ती	तु	तू	ते	तै	तो	तौ	तं	तः
१	१	३	३	२	२	४	४	५	६	७	८
थ	था	थि	थी	थु	थू	थे	थै	थो	थौ	थं	थः
२	२	४	४	३	३	५	५	६	७	८	९

द	दा	दि	दी	दु	दू	दे	दै	दो	दौ	दं	दः
३	३	५	५	४	४	६	६	७	८	९	१०
ध	धा	धि	धी	धु	धू	धे	धै	धो	धौ	धं	धः
४	४	६	६	५	५	७	७	८	९	१०	११
न	ना	नि	नी	नु	नू	ने	नै	नो	नौ	नं	नः
५	५	७	७	६	६	८	८	९	१०	११	१२
								(१००)			
प	पा	पि	पी	पु	पू	पे	पै	पो	पौ	पं	पः
१	१	३	३	२	२	४	४	५	६	७	८
फ	फा	फि	फी	फु	फू	फे	फै	फो	फौ	फं	फः
२	२	४	४	३	३	५	५	६	७	८	९
ब	बा	बि	बी	बु	बू	बे	बै	बो	बौ	बं	बः
३	३	५	५	४	४	६	६	७	८	९	१०
भ	भा	भि	भी	भु	भू	भे	भै	भो	भौ	भं	भः
४	४	६	६	५	५	७	७	८	९	१०	११
म	मा	मि	मी	मु	मू	मे	मै	मो	मौ	मं	मः
५	५	७	७	६	६	८	८	९	१०	११	१२
								(१००)			
य	या	यि	यी	यु	यू	ये	यै	यो	यौ	यं	यः
१	१	३	३	२	२	४	४	५	६	७	८
र	रा	रि	री	रु	रू	रे	रै	रो	रौ	रं	रः
२	२	४	४	३	३	५	५	६	७	८	९
ल	ला	लि	ली	लु	लू	ले	लै	लो	लौ	लं	लः
३	३	५	५	४	४	६	६	७	८	९	१०
व	वा	वि	वी	वु	वू	वे	वै	वो	वौ	वं	वः
४	४	६	६	५	५	७	७	८	९	१०	११
श	शा	शि	शी	शु	शू	शे	शै	शो	शौ	शं	शः
१	१	३	३	२	२	४	४	५	६	७	८
ष	षा	षि	षी	षु	षू	षे	षै	षो	षौ	षं	षः
२	२	४	४	३	३	५	५	६	७	८	९
स	सा	सि	सी	सु	सू	से	सै	सो	सौ	सं	सः
३	३	५	५	४	४	६	६	७	८	९	१०
ह	हा	हि	ही	हु	हू	हे	है	हो	हौ	हं	हः
४	४	६	६	५	५	७	७	८	९	१०	११

तत्र सयोगो(गे) आलिंगिताभिधूमितदग्धसख्या कथ्यते— विशेषसख्या कथ्यते । विशेष-सख्यमानामा(सख्यानाम) प्रमाणमादेश्यम् । —

पढमक्खरसंखाए, जाणसु णामक्खराण परिमाणं ।
आलिंगि[पं० १०३, पा० १]याइ तत्तो, एक्कोत्तरिया हवइ हाणी ॥ १९४ ॥

प्रश्नाक्षराणा प्रथमाक्षरस्य या सख्या ह्रसं(स)ति । अभिधूमिता द्वे, दग्धास्तिश्रा (स्रः) संख्या ह्रसति ॥ १९४ ॥

सेसं उ णामसंखा, णिस्सेसमणंतरस्स संखाए ।
तत्तो नामपमाणं, पढमिल(ल्ल)कमेण णेयव्वं ॥ १९५ ॥

नि० गा० ६

तस्मात्(द्)परात्(द्)भिघाताद्(द्)आद्याः(द् वा) शेषा समामाक्षरसंज्ञा निर्दिष्टा(ष्ट) यथा पूर्वाक्षरो(रा)भिघात(ते)न सकल(ला) इत्यादि यथा यथा[:] पूर्वस्मादक्षरात्भिघातगुरुतया (द्रष्टा) शेष[ा] ते[षां] नामसंज्ञा ज्ञेया । तस्मात्नामाक्षरस्य [प १ ६,प २] प्रमाण प्रमेय मासम्भिस्तुत्यम् ॥ १९५ ॥

पढमो(मा) तइया संपत्कराओ थोवं च सत्तमिच्छसि ।
बितिय-चउत्था तेसिं, विपत्करा ते य बहुसंसा ॥ १९६ ॥

प्रथमाः—क च ट त प य शाः । तृतीयाः—ग ज ड द ब ल साः । तेषां संपत्कुर्वन्ति स्तो(स्त)-मकरा[ः]गुणैस्त(च)तुर्थिवायाः प्रभुः । अल्पस्तु लाभकालं भवति । तद्युक्ते प्रश्नेऽल्पमात्राक्षर संज्ञा ज्ञेया । द्वितीयो वर्गः—ख छ ठ थ फ र षाः । चतुर्थो वर्गः—घ झ ढ ध भ व हाः । एते विपक्ष(क्ष)-य बहुसंख्या न समकरा इत्यर्थः । अस्पष्टं बहुकालिकं च कुर्वन्ति । तद्युक्ते प्रश्ने महती नामाक्षरसंज्ञा ज्ञातव्या ॥ १९६ ॥

एस सराणं गमओ, वग्गाण सत्तमह्ना(तुमा)ण य ।
विसमक्खरम(व)ग्गाणं, चरिमाण थोविआ संसा ॥ १९७ ॥

एष स्वराणां विधिरिति पा(पु)र्वे ह्रस्वस्वराः संपत्करास्ते महति(ती) विभूतिं कुर्वन्ति । दीर्घस्वराः । नामसंज्ञाक्षरा(अक्षर ?) लक्ष्मीं कुर्वन्ति । शेषस्वरा विपत्करा अल्पम् ल्पाः । नामाक्षरसंज्ञां महतीं कुर्वन्ति । अनुमेयार्थं पूर्वोक्तं निर्दिशति । एवं स्वरवर्गं व्याख्य । आद्यस्तु पंच आद्ये वर्गा ज्ञाः । समस्तवर्गेष्वाद्यसमवर्गेषु च वर्गसंज्ञा इह(ह)योऽप-अक्षरवर्गाणये । विषमाक्षरवर्गे ये के ? क च ट त प य शाः, ग ज ड द ब ल सा स(म) । चरिमा-ण(अ ।)पंचवर्गेष 'ङ ञ ण न मा' स(म) । चरिमो च 'अं अः' अनयोरल्पस्वरसंज्ञा ज्ञेया ॥१९७॥

जे जे जहा सपक्खा, तेसिं दोण्ह पि मेलिया संसा ।
अभिहयसुद्धा दुगुणा, काऊण निद्दि(द्दि)से सत्ता ॥ १९८ ॥

प्रमादो योऽक्षरवास ये स्वपक्षा उच्यन्ते । वैरभिघात[प १ ४ प १]नामाक्षरस्य तत् इ(कि)यते । स नामभिघातकः । अभिहितोऽनभिहितस्तु न दोषः । तयोर्द्वयोर्मिलितयोर्या संज्ञा तथा(या ?)नामनिर्देश[ः]कार्यः । इत्याचार्योक्तपरिभाषा व्याख्यातम् । यत्तु विवक्षम् । यत आचार्य-कृतम्— 'पढमक्खरसंजुए पावे नामक्खराण परिमाणं । आलिंगियाउ दढो एकत्थिया हवइ हत्थी ॥' इत्यवेम । उच्यते—अत्र स्वसर्गाभिहितो यो(ऽर्थो) विधिः । इह स्वपरपक्षाद्(स्वपक्षात्) । स्वसर्गोपचारात्र सुद्धोपदेश[प १ ६ प १] इति । नामर्केनाभिहि(ह)तस्य पक्षे द्रव्यसंख्यायोगे संज्ञा नामाक्षरप्रमाणमभिहता । यथा अस्थौ अभिहतौ समपक्षता स्वसमभिघाते अभिघातोप-संज्ञा(ख्यां) विशोध्य शेषा(षां) द्विगुणीकृत्य तथा प्रमाणे (तत्प्रमाणो) नामनिर्देशः कार्यः ॥१९८॥

परपक्खाणं संसं, अभिहयसुद्धं परोप्परं गुणए ।
सुण्णेण(णं) विहिऊणं, पत्ताणं निद्दिसे संसं ॥ १९९ ॥

यथा धातु-मूल-जीव-संख्या विज्ञातव्या । किंचित्परिमाणमिति । तथा स्वपक्षसंज्ञा मांसी(गंधी)-इ(कि)यते । परपक्षसंज्ञैनामी(ही)कर्तव्या । कन्यापुत्र्या(त्र) एव विधिः । प्रमादो योऽक्षरा

योऽभिघातकः । तस्य यो व्यवहितोऽव्यवहितान्यः । अवव्यहितोक्तता(तोक्ता)भ्याम भिघातसु(शु)द्धाभ्या परस्पर गुणिने(ते)ति सख्यारूपमिवोच्यते । परस्पर सख्या [याः?] एकपिंडमापाद्य दस(श)भिर्गुणय(यि)त्वा प्रष्टुद्र(द्रे)व्यसख्यानिर्देशः कार्यः ॥ १९९ ॥

बहुसंख-अप्पसंखा, वड्ढ(ड्ढ)इ हाइति य अप्पसंखाओ ।
सोहे[प० १०६,पा० १]तु अप्पसंखं, दव्वाणं निद्द(दि)से संखं ॥ २०० ॥

अथ द्रव्य अल्प[बहु]सख्याया आनयनोप(पा)यः प्रकारान्तरेण कथ्यते—सकला प्रश्ना गृह्य । बहुसख्या द्वि-चतुर्थ-वर्गाक्षराः, अल्पसख्या प्रथम-तृतीयवर्गाक्षराः । तेषा विद्यमानाभिघातशुद्ध(द्धा)नामवसि(शि)ष्टसख्यापिंड स्थापयेत् । बहुसख्यानामपि विद्यमानाभिघातशुद्धाना सख्यापिंडमवस्थापयेत् । द्वयोरनयोः सख्यापिंडयोर्या यत्र शुद्ध्यति ता [प० १०६,पा० २] तत्र सोव(शोध)यित्वा या परिशिष्टा ना(ता) शून्येन विश्रा द्रव्यसख्या ज्ञेया ॥ २०० ॥

जह चेव दव्वसंखा, भणिया तह चेव कालपरिमाणं ।
एक्कमणसो करेज्जा, पुव्वाइतिउ(रिओ)वएसेणं ॥ २०१ ॥

यथैव द्रव्यसख्याऽभिहिता तथा तेनैव प्रकारेण तस्या द्रव्यसख्याया[ः] कालपरिमाणं कुर्यात् । अनन्यमहानैमित्तिः(त्तिक)पूर्वाचार्योपदेशेनेति । तच्च कालपरिणाम(माण) कालप्रकरणे यथा वक्ष(क्ष्य)तीति नोक्तमिहेति ।

अन्ये पठन्ति 'तहेव कालपरिमायण' यथा द्रव्यस्य कालपरिमाण उपचयापचयं वा प्रति । यथा पृष्टः(ष्टुः) [प० १०७,पा० १] आयु[ः]प्रमाणमपि वक्तव्यम् । तदुच्यते—देवकीं(दैविकीं) प्रश्ना परिगृह्य मानसिं(तुषीं) वा सैवाकाशप्रश्नोच्यते । प्रष्टुज(र्जे)न्मकर्मनक्षत्रसख्यामभिघातशुद्धामेकत्र सपिंड्य विसो(शो)त्तरन(श)तमध्यात्मो(च्छो)ध्यः । शेष मध्यः । परमायुरेकाते स्थाप्य त[ः] प्रत्येक गर्भरि(र्क्ष)क्षसख्या मेलयित्वा । स च एकोनविंशत्तमो ग्राह्यः । प्रश्नाच्च प्रत्येक यो(या) यत्र शुद्ध्यति ता विशोध्य यत्से(च्छे)प तत्पूर्वलब्धपरमायुम(र्म)ध्याच्छोध्यम् । प्रष्टना(ष्टुर्ना)माक्षरों स्वकालरूपां गणयित्वा छो(शो)धयेत् । शेषः स्फुटः परमायुःपिंडक इति । [प० १०७,पा० २] गतकालपरिज्ञानार्थं उदयनक्षत्रसख्याभिघातशुद्धा सपिंड्यैकत्र द्विगुण कुर्यादेकान्ते अवस्थाप्य ततः जन्मकर्मगर्भरी(र्क्ष)क्षाद्यक्षरसख्यामभिघातरहिता सपिंड्य(ड्या)नन्तर द्विगुणीकृत्य संख्या विशोध्य (?) भूय सकला नामाक्षरा सो(शो)धयित्वा शेषेण अतीतकाल इति । परमायु·पिंडाद्विशोध्य शेषमागा[प० १०८,पा० १]मिनी भवतीति । एव नैमित्तिकपूर्वाचार्योपदेशेनानत्यमाना (? ॰नायुष्यमान) कुर्यादिति ॥ २०१ ॥ तथा लेखाक्षरसख्यापरिज्ञानार्थम्—

अक्खरमीसं दुग(गु)णं, वग्गेयव्वं सदा पयत्तेणं ।
पणपण्णभागसेसं, तमि गुणा म(अ)क्खरं जाणे ॥ २०२ ॥

प्रश्नाक्षराणा या यस्य स्वरसख्याऽभिहिता ता सख्यां सकलामेकीकृत्वा द्विगुण कृत्वा ततो वर्गयित्वा[प० १०८,पा० २]पृच्छा(प्रस्था)पयेत् । तस्य च पृ(प्र)स्थापितस्य द्वे क्रिये भवतः । तत्रैका लेखाक्षरसख्यापरिज्ञानक्रिया, द्वितीया च वर्गानयनक्रिया । तत्र तावले(ल्ले)खाक्ष(क्ष)रस्य सख्याक्रिया भण्यते—वर्गये(र्गयि)त्वाऽऽद्य स्थापित प्राकृतप्रतिरास्य(श्या?) पचपचास(श)ता भागमपहाल्य

मक(क)र्म्यं तत्पृथक् स्थापयेत् । तस्मिन् पृथक् स्थापिते पूर्वनिर्दिष्टस्व(वा)क्षरसंख्या लोपयित्वा पंचपंचाशत्प्रमाणावस्थि(स्थि)ताय तत्रैव मिलिता लेख्याक्षरसंख्या भण्यते ।

सो(सा)म्प्रतं कवर्गादिवर्गप्रमाणनिर्णयोऽभिधीयते—यत्र पूर्वनिर्दिष्ट[प १ १ प १]मक्षरादिकं, तस्य पंचपंचाशत्प्रमाणमपहृ(हा)य तत्(त्)र्म्यं तत्पृथक् स्थापयित्वाऽवशिष्टस्य भागमि मा(र्गो)गेऽपहृते पत्(त)म्यते तद्वर्गककारादिपञ्चमपर्यन्तमवशिष्टं भवति ककारादिरेव वर्गः । यदा सर्वं शुद्ध्यति तदा शरो लभ्यते । ककारापहृतापि पंचसप्तादिकं यदि भवति तत् स[प्त]भिरेव भाजितव्यम् । त(य)दा न सप्तादिकं शुद्ध्यति तदा तदापि ककारादिरेव वर्गः । एव नामसंख्याप्रमाणेन वर्णान्(ण)न्वेषण(ये)त् मतिमानिति ॥ २ २ ॥

॥ इति लेख्यगंडिकाधिकारम(रे) संख्याप्रमाण [प १ १ प १] समाप्तम् ॥

दिणपक्खमाससंवच्छ(च्छ)रक्खरा जे हवंति बहुलत्ता ।

तप(प्प)इ स[ता] गुणए, तस्स समाणा हवइ सत्ता ॥ २ ३ ॥

क च ट त प य शाः – दिवसाः । ख छ ठ थ फ र षाः – पक्षाः । ग ज ड द ब ल साः—मासाः । घ झ ढ ध भ व हाः – संवत्सराः । ङ ञ ण न माः – मासाः । दिनपक्षमाससंवत्सराक्षरप्रमाणबहुत्वे प्रश्नेऽभिधायं लोपयित्वा ये(ये)षां[प ११ प १]मधिका संख्या दृश्यते तां गणयेत् । दिवससंख्या(य)क्षवर्गस्याधिकसंख्यया दिवसैरेवावधि(धिः) भवतीति शुभाशुभफलादेशः कार्यः । एव पक्षाक्षराणां मासाक्षराणां संवत्सराक्षराणां चाधिक्य(क्ये) संख्या वक्तव्येति ॥ २०३ ॥

सत्तम-णवमे य सरे, सुक्कम्मि पढम-तइयवग्गे य ।

बितियवग्गे दसमे, सरे य पक्खो हवइ बहुले(ले) ॥ २ ४ ॥

सप्तमस्वरेण एकारेण नवमस्वरे[ण] ओ(ओ)कारेण क च ट त प य शानां ग ज ड द ब ल सानां सर्वे उपरिगतेन केवलेन वा स्थापितेन शुक्लपक्षो भवति । द्वितीयो वर्गः—ख छ ठ थ फ र षाः, ऐ(ऐन) अ(औ)कारेण च कृष्णपक्ष आदेश्यः ॥ २ ४ ॥

अट्ठमसरम्मि संवत्स(च्छ)रा हु वग्गे(ग्गो) य तह य चउत्थम्मि ।

चरिमे चाउस्स(स)रेसु य, मासा अणुणासिये य तहा ॥ २ ५ ॥

घ झ ढ ध भ व हा नामप्रमाणादिके प्रश्ने अष्टम[प १११ प १]स्वरेण ऐकारेण युक्, एता वा(एवैता)मन्यतमाक्षरे केवले ऐकारे वा वक्तव्यादिके पारिकल्पित पृच्छति तत् 'संवत्सरेण भाव्यम्'—इति वक्तव्यम् । चतुर्भिर्वा इति । चरिमाभ्यां सबिन्दु-विसर्गाभ्यां, ङ ञ ण (ङ ञ ण ?) अनुनासिक ङ ञ ण न माः, चरिमैर्मासा(सा) आदेश्याः । पूर्वोक्तन्यायेनेति ॥ २ ५ ॥

पढमे य सत्तमसरे, पाडिवओ होइ सुक्कपक्खस्स ।

कायक्खरेसु सव्वसु, बितियादी अट्ठमी जाव ॥ २ ६ ॥ [प १११ प १]

प्रथमस्वर अकारः । सप्तमस्वर एकारः । एतद्बहुले प्रश्ने शुक्लपक्षस्य प्रतिपद्भवति । ककार बहुले प्रश्ने द्वितीया, चकारबहुले तृतीया, टकारबहुले चतुर्थी तकारबहुले पंचमी पकारादिके षष्ठी यकारादिके सप्तमी [शकारादिके अष्टमी ।] एवं शुक्लपक्षे ॥ २ ६ ॥

तइए णवमे य सरे, पाडिवओ [प० ११२, पा० १] होइ सुक्कपक्खस्स ।
गायक्खरेसु सत्तसु, णवमादी पुण्णिमा जाव ॥ २०७ ॥

तृतीयस्वर इकारः, नवमस्वर ओकारः। एतद्बहुले शुक्लपक्षस्य प्रतिपदा भवति। गकारबहुले प्रश्ने नवमी। जकारबहुले दशमी। डकारबहुले एकादसी(शी)। दकाराधिक्ये द्वादशी। धकाराधिके त्रयोदशी। लकाराधिके [प० ११२, पा० २] चतुर्दशी। सकारबहुले पूर्णमासी ॥ २०७ ॥

अट्ठम-वितिए य सरे, पाडिवओ होइ किण्हपक्खस्स ।
खादक्खरेसु सत्तसु, वितियादी अट्ठमी जाव ॥ २०८ ॥

द्वितीयस्वर आकारः। अष्टमस्वर ऐकारः। एतद्बहुले प्रश्ने कृष्णपक्षस्य प्रतिपद् भवति। खकाराधिके द्वितीया। छकाराधिके तृतीया। ठकाराधिके चतुर्थी। थकाराधिके पचमी। फकाराधिके षष्ठी। रकाराधिके सप्तमी। पकाराधिके अष्टमी। तस्यैव कृष्णपक्षस्य ॥ २०८ ॥

दसम-चउत्थे य सरे, निदि(द्दि)ट्ठे तह य कण्हपाडिवओ ।
घादक्खरेसु सत्तसु, णवमादी [प० ११३, पा० १] सोलसी जाव ॥ २०९ ॥

दशमस्वर औकारः। चतुर्थः स्वर ईकारः। एतदधिके प्रश्ने कृष्णपक्षप्रतिपद् भवति। घकारबहुले नवमी। झकारबहुले दशमी। ढकारबहुले एकादशी। धकाराधिके द्वादशी। भकाराधिके त्रयोदशी। वकाराधिके चतुर्दशी। हकाराधिके अमावास्या। एतास्तस्यैव कृष्णपक्षस्य ॥२०९॥

पंचमवग्गो पंचम-सरे [य] एकादसी तहा होइ ।
अणुणासिएसु दोसु वि, सेसा तिहिणो य चत्तारि ॥ २१० ॥

पंचमो द्विस्वभावः। अतः उभयपक्षस्यापि शुक्ल-कृष्णाख्यस्य ग्राहको भवतीति। पचमवर्गप्रतिबद्ध उकारस्त[प० ११३, पा० २]द्बहुले प्रश्ने उभयपक्षस्यापि पचमी। ओकाराधिके षष्ठी। ङकाराधिके सप्तमी। ञकाराधिके अष्टमी। णकाराधिके नवमी। नकाराधिके दशमी। मकारबहुले एकादशी। अकारः सानुस्वारः, तदधिके प्रश्ने द्वादशी च त्रयोदशी। अकारः सविसर्गः, तद्बहुले प्रश्ने चतुर्दशी पचदशी चेति। एतास्त्रिवर्गा द्विस्वभावत्त्वा(त्वा)दक्षराणां पक्षद्वयस्य विज्ञेयाः ॥ २१० ॥

वितिया अणुणासाई, एवं तिहिणो कमेण चत्तारि ।
दिट्ठंमि कण्हपक्खे, एव तिहिणो य(प)विभागो य ॥ २११ ॥

उक्तार्थे वा अतिदेशार्थकारिका। पूर्वार्द्धदृष्टे च कृष्णपक्षे शुक्लपक्षे च। एवमुक्तन्यायेन तिथीना प्रविभागः कर्त्तव्यः ॥ २११ ॥

सवत्स(च्छ)रंमि दिट्ठे, वितिए वग्गंमि [प० ११४, पा० २] जाण हेमंत(तं) ।
तइयंमि गिम्हकालं, चउले(चउत्थए) पाउसं जाण ॥ २१२ ॥

सवत्सराक्षरे प्रश्नाक्षराणामादौ दृष्टे द्वितीयवर्गाक्षरे च तस्यानन्तर अग्रतो दृष्टे हेमतकाले प्रष्टव्यः। सवत्सराक्षराः—घ झ ढ ध भ व हाः, द्वितीयवर्गाक्षराश्च—ख छ ठ थ फ र पाः। तस्य

संवत्सराक्षरस्य प्रथमाक्षरस्याधो स्थितस्य यदा ग ज ड द ब ळ सा मात्रान्यतमाक्षरेऽन्यतरमेवाभतो दृश्यते तदा ग्रीष्मकालं आदेशयः । तत्र संवत्सराक्षरस्य आदौ स्थितस्य यदा घ झ ढ ध भ म य ए मात्रान्यतमाक्षरो दृश्यते तदा प्रावृट्कालो वाच्यः ॥ २१२ ॥

पढमयंमि य वरिसा, वसंतकाल च पढमकाईसु ।

आयक्खरेसु पचसु, सरओ सेसेसु पढ(ठ)यं पि ॥ २१३ ॥

तस्यैव संवत्सराक्षरस्य, प्रथमाक्षरस्याधस्तात् [प ११५,पा २] क ख ग घ मा[त्रा]न्यतमाक्षरे यद्यन्यतरमेवाभतो दृश्यते तदा वर्षाकालो(लः) । तस्यैव संवत्सराक्षरस्य प्रथमाक्षरस्याधस्य च छ ज झ ञ इत्येतेषां पञ्चाना[म]न्यतरमेवाभतो दृश्यते तदा वसन्तकालो(लं) आदेशयः । तस्यैव संवत्सराक्षरस्य प्रथमाक्षरस्याधस्य त थ द मा(त्रा) इत्येतेषां चतुर्णां केचित् लभ्यते न प्राप्यते ककार-ख(ग)काराभ्यां तदा मध्यवर्षायां अ-ए सरअं न गम्यते । क च ट त प इत्येते तद् गम्यन्ते । एवं यदाऽर्थो[प ११६ पा १]ऽत्रयेषामन्यतमाक्षरो दृश्यते तदा शरत्काल आदेशः । पौष-माघौ हेमन्तः । फाल्गुन-चैत्रौ वसन्तः । वैशाख-ज्येष्ठौ ग्रीष्मः । आषाढ-श्रावणौ प्रावृट्कालः । भाद्रपद-अश्वयुजौ वर्षाकालः । कार्तिक-मार्गशीर्षौ शरत् । एवं क्रमः । गाथासंख्याक्रमेयथा तथा यथोक्तः ॥ २१३ ॥

पढमस्स पढमताइए, फग्गू चित्तो य दोसु चाईसु ।

दोस(सु) य कत्तियमासो, मग्गसिरो दोसु वरिसेसु ॥ २१४ ॥

प्रथमवर्गस्य प्रथम-द्वितीय-तृतीये च [प ११६ पा २] क-ख-ग फाल्गुनः । प्रश्नादौ स्थित स्थिवैरि(ठ)त्यादरैरन्यतरोऽथवा प्रश्नाणां मात्राक्षरस्यान्यतमो यदा दृश्यते तदा फाल्गुनो मासः । एवं क्रमेण चकार-छकारौ चैत्रः । तकार-थकारौ कार्तिकः । प-ब(फ) मार्गशीर्षः ॥ २१४ ॥

एमेव सेसयाण, छदुमग्गाण मध चउरो(त्था) य ।

मासक्खरा उ कमसो, पोसाई जाव अस्सजुओ(जो) ॥ २१५ ॥

अ ए ख ड ठ पौषः । ग ङ ए द माघः । इ ओ ग ज छ वैशाखः । घ च छ ध ज्येष्ठः । ई औ च ह ढ आषाढः । ब म भ ढ श्रावणः । [प ११ पा १] ऊ ठ थ भ भाद्रपदः । य म क्ष अः अश्वयुजः । एवं पौषादिरश्वयुजपर्यवसा[न]मिति । तत्र चतुर्थवर्गोक्षरा ये च चत्वार च(त्वा)रः । पंचमवर्गाक्षराः ङ ञ ण न मा मासाक्षराः । ते मासाक्षराः संवत्सराक्षराणामुपरि गता अभतो वा व्यवस्थितानां वर्द्धते । एतेषु तेषु वर्णाक्षरा मासाक्षरा भवन्ति । तैर्मासादेशः कार्यः । अश्वयुजमासाक्षरस्य वर्षाप्रवृत्तिः, समासिक च भाद्रपदमासे । एवं मासक्रमो ज्ञेयः । अनेन क्रमागमं[प ११७ पा २]-पुरुष-स्त्री-नपुंसक-जीवितमरण-लाभालाभादिषु संवत्सरान्यथा प्रमाणैः मासं आदेशयः पुरुषादिकेन निमित्ते(त्त)ज्ञानम्(न)मिति ॥ २१५ ॥

॥ कालप्रकरणं समाप्तम् ॥

छामद्धि(ठ्ठि)मस्स छाम, वग्गिजा जइ उत्तरा हु अणमिहया ।

अहरेसु णत्थि लाहो, पे सि[य] अहराहरा चउरो ॥ २१६ ॥

[प० ११८, पा० १] अनभिहतोत्तराक्षरबहुले प्रश्ने प्रगुला(र्ला)भ आदेश्यः । अधराक्षराधिके नास्ति लाभः । येऽपि चाधराधरा[ः] चत्वारः स्वराः प्रागुक्ता[ः] तेऽप्यलाभकराः । 'आ ई ऐ औ' एतेष्वधिकेषु लाभो नास्तीति ॥ २१६ ॥

लब्भइ लहं(हुं) सजोणुत्तरेसु[प]रजोणि उत्तरे लाभं ।

लब्भइ विलंबियकाले, सपरिके(क्के)सं [प० ११८, पा० २] अहएसु ॥२१७॥

उत्तरजीवाक्षरबहुले प्रश्ने अभिप्रेतमर्थ(र्थं) क्षिप्रं लभते स्वजना[त्], तैरेव जीवाक्षरै-रधिकेषु प्रश्ने उत्तरधात्वक्षरमिश्रेषु उत्तरमूलाक्षरमिश्रेषु वा परश(स)काशाल्लाभो वाच्य(च्यः) । एषामेव जीवधातु-मूलाक्षरा[णा]मुत्तराणामधिकाना आलिंगिताभिधूमितानां चिरात् परिक्लेशेन वाऽभिप्रेतार्थमर्थं प्राप्नोति । यतः कृ(कु)तश्चिद(द्द)ग्धेनैवास्ति लाभ इति ॥ २१७ ॥

जह चेव य अभिघाते, तह चेव य उत्तराहरेसुं पि ।

धातुस्सरा य चरिमा, [प० ११९, पा० १] सभावदीहा य अहरहरा ॥२१८॥

शुभाशुभ पृच्छतः अभिघातरा(ता)लिंगिताभिधूमितदग्धलक्षण उत्तराक्षरेणाधरेण आलिं-गितो(ते) उत्कृष्टात् सकाशादल्पक्लेशो भवति । प्रष्टुः उत्तराक्षरेणाधरो(रा)क्षरेणाभिधूमिते सत्यु-त्कृष्टात् सकाशान्मध्यमक्लेशो भवति । प्रष्टुः उत्तराक्षरेणाधरो(रा)क्षरे दग्धे सत्युत्कृष्टात् सकाशान्म-हाक्लेशो भवति । अधराक्षरेणोत्तराक्षरे आलिंगिते धर्मादल्पदुःखमवाप्नोति । अधराक्षरेणोत्तराक्षरे अभिधूमिते धर्म(र्मात् ?)मध्यम दुःखमवा[प० ११९, पा० २]प्नोति । अधराक्षरेण उत्तराक्षरे दग्धे धर्मान्महद्[द्]दुःखमवाप्नोति । एव शुभाशुभ पृच्छतो वाच्यम् । धातुस्वरौ द्वौ 'उ ऊ', चरिमौ 'अ अः', ङ ञ ण न माः । स्वभावदीर्घास्त्रयः स्वराः 'ई ऐ औ' । इत्येतेषा मध्ये 'ई औ' अधराधरो(रौ) चतुर्थवर्गप्रतिबद्धत्वात् । एते दाह्या दहन्ति, न लाभं कुर्वन्त्यधिकाः प्रश्ने । दाह्य(ह्या)श्च पूर्वोक्ता एव ॥ २१८ ॥

अहरेसु अत्थि लाहो, जइ उत्तरवंजणेण अणुवलिओ ।

अहरबलाणुबलेणं, पुणो(?) भणिज्ज लाभं तु णत्थि त्ति ॥ २१९ ॥

अह(ध)रेषु लाभः प्रतिबद्धः अपि वादार्थं भवत्यधरेषु लाभो यद्यु[प० १२०, पा० १]त्तरे-ष्वनुवलिता भवन्ति । यदा त्वधराः अधरानुवलास्ता(स्त)दा नास्त्येव लाभ इति ॥ २१९ ॥

जइ अक्खरअणभिहया, पण्हे दंसीति उत्तरा लहुआ ।

तो भणसु रायलाभं, अहराहरसंजुए णत्थि ॥ २२० ॥

प्रश्नाया उत्तराः लघवः जीवाक्षराः अनभिहता शुद्धा यदा बहवः, तदा क्षत्रियस्य राज्यार्थिनो राज्यलाभः । शेषवर्णाना यथास्वमर्थलाभो वाच्यः । योनिधि(वि)शेषाक्षराणां तथा देश्यम् । 'अधराधर' इति अधरैः अधरस्वरयुक्तैर्नास्ति लाभ इति प्रागुक्तमेवेति ॥ २२० ॥

लाभंमि पढमदिट्ठे, [प० १२०, पा० २] तिविहं कालं तु निद्दिसे तस्स ।

अतिगतमेस्सं वट्टन्त पंचवग्गाणुमाणेणं ॥ २२१ ॥

लाभाधिकार एवायम्—लाभे प्रथम दृष्टे तृ(त्रि)विधे कालमतीतमनागत वर्तमान च । वर्गाणा परिणामेन निर्दिशेदित्येतत्सूत्रमुपरि गाथा(थ)या व्याख्यास्यति ॥ २२१ ॥

पढमतइया सु वग्गा, वट्टंते मितईअ(वियईं)ओ अईअंमि ।
सेसा दोण्णि वि वग्गा, कालंमि अगामिय(य आगमि)स्समि ॥ २२२ ॥

प्रथमवर्गाक्षरा[प १२१ ब १]णां क च ट त प य श नाम्, तृतीयवर्गाक्षराणां ग ज ड द ब ल सा नाम्, अभ्यन्तराभिधे प्रश्ने वर्तमानकालमवगच्छ । द्वितीयवर्गाक्षराणां ख छ ठ थ फ र षा नामन्त्यभिधे अतीतकालमवगच्छ । शेषवर्गाक्षराणां घ झ ढ ध भ व हा नाम ङ ञ ण न मा नां बाह्य-तमाभिधे भविष्यत्कालमवगच्छ । प्रयुक्त वर्तमानकालाभिधे प्रश्ने प्रयुक्त(र्व)र्तमानकालो(ले) लाभः । अतीताक्षरै[प १२१ ब १]र्युक्ते प्रश्ने आसीत्(? अतीतका)लः । भविष्यत्का-लाभिधे प्रश्न भविष्यति लाभः ॥ २२२ ॥

जा जस्स पुव्वभणिया, जोणी तस्सक्खराइ लक्खेज्जा ।
तस्सेव वसे लाभ, वा पाविय णिद्दिसे तेणं ॥ २२३ ॥

या यस्य जीव-धातुमूलानां योनिरुक्ता तस्याभिधायका यो (योने:) अक्षराणां मध्ये यदा जीवाक्षरा अधिका भवन्ति तदा जीव लभ्यत इति [प १२२ ब १]वक्तव्य(मुक्तं)म् । द्विपद चतुष्पदस्य वा अक्षराणुमानेन पूर्वोक्तमपेव वचनम् । एवं धा(तु)स्वरूप यदा अक्ष[:] तदा धातुं प्राप्स(प्स्य)तीति प्रयुक्ता(वो)च्य । यदा मूलाभिधा यदा मूलाभ्य-मवाप्नोतीति वक्तव्यम् ॥ २२३ ॥

तदा वक्तव्य इति गाथान्तरेणाह—

पण्हक्खरेसु पढमो, जारिसओ दरिसिज्ज जीवाइं ।
तारिसयस्स य लाभो, धायाति य [प १२२ ब १] णिद्दिसे तेण ॥२२४॥

सुगमैव गाथा ॥ २२४ ॥

पढमाइ वमणाणं, बीओ वग्गो हवइ वेसाणं ।
तइओ य खत्तियाण, सुद्दाणं सेसया दोण्णि ॥ २२५ ॥

प्रथमवर्गाक्षराणां क च ट त प य शा नां अभ्यन्तराभिधे प्रश्ने ब्राह्मणब्राह्मणो(लाभ) वक्तव्य । द्वितीयवर्गाक्षराणां ख छ ठ थ फ र षा नां अभ्यन्तराभिधे प्रश्ने वैश्यलाभ(ला)भो वक्तव्य । तृतीयवर्गाक्ष[रा]णां ग ज ड द ब ल सा नामभ्यन्तराभिधे प्रश्ने क्षत्रियला(ला)भो वक्तव्य । शेष वर्गाणां घ झ ढ ध भ व हा नां बाहुल्ये तदा शूद्र[त] लाभो वक्तव्य [प १२२ ब १] इति । ङ ञ ण न मा [नां] अभ्यन्तरबाहुल्ये संकरजातीयाला(ला)भ इति । अनेन जातीयता तथा वर्णं च ज्ञातव्यम् ॥ २२५ ॥

अपे(प्पे)वि यणभिहया, पण्णिया (ग्गिय ?) वग्गा(ग्गा ?)सवग्गसञ्जुत्ता ।
अभिहयपरसंजुत्ता, णीया (णय) हीणाहियसमा भणिया ॥ २२६ ॥

अनभिहता सर्ववर्णाक्षरा यावति(दि)र्ध्ये भवति । ते प्रश्नाभिधे लाभो भवति । ये पर पा(र)रमभिघ्नन्ति । क च ट त प य शा[नां]परिघ्नते । घ झ ढ ध भ व हा नां च ग ज ड द ब ल से

रुपरिगतैभ(र्भे)यति । स्व[व]र्गसयोगः । तद्बहुले प्रश्ने लाभो भवति । ये परस्परमभिन्नंति । स घाभि[प० १२३,पा० २]घातस्त्रिविधः । आलिंगितादिकः पूर्वोक्तः । योऽसौ प्रत्ता तदभिघातेन घम्मा(र्गाः ?) कदाचित्संख्यया हीना[ः] कदाचिद(द)धिका[ः] कदाचित्समा भवति(न्ति) । एकै-(ते ?)न अभिम(ह)न्यंते(?) । हीने(?) फललाभ[ः] प्रश्ने समे ईपत्फल भवति । दृष्टैरधिकैस्त्व(श्च) फलाभावः । एवमेति(मिः) शुद्धशेपैः शुभाशुभमध्यमादेश्यम् ॥ २२६ ॥

पढम-तइज्ज(ज्जे) वग्गे, होइ [प० १२४,पा० १] सुही दुक्खिओ वी[य]-चउत्थे ।
पंचमए पुण वग्गे, सुह-दुक्खे(क्खं) मज्झिमं तस्स ॥ २२७ ॥

प्रथमवर्गः—क च ट त प य शाः । तृतीयो वर्गः—ग ज ड द ब ल साः । एपामक्षराणां बाहुल्ये सुखविवक्षायां प्रष्टु[ः] सुखलाभो भविष्यति सुखावान्ति(प्ति)रित्यर्थः । द्वितीयवर्गः—ख छ ठ थ फ र षाः । चतुर्थो—घ झ ढ ध भ व हाः । रे(ए)तेषा अक्षराणां बाहुल्ये प्रष्टादु(दुरु)त्पातो [प० १२४, पा० २] ॥ ज्ञेयः । दु(उ)त्पा[ता]गमो वा भविष्यतीति । पंचमवर्गो—ङ ञ ण न माः । तेषु च [सुख]दुःख मध्यममवाप्नोति । एवमसौ सुख-दुःखी (खानि ?) वा तत्राप्ये(प्नो)ति येव(एवं) वाच्यम् ॥२२७॥

बीय-चउत्था वग्गा, दिट्ठा इच्छंति सुबहु आउं [च] ।
पंचमओ पुण वग्गो, मसि(ज्झि)मआउं सया इच्छे ॥ २२८ ॥

द्वितीयवर्गः—ख छ ठ थ फ र षाः । चतुर्थः—घ झ ढ ध[प० १२५, पा० १]भ व हाः । एतेषाम-॥ क्षराणा बाहुल्ये आयु[ः] पृच्छतः, आयु[ः] प्रभूत(भू)त वक्तव्यम् । फलं लाभादिकं पृच्छति(तः) अल्पं वक्तव्यम् । पचमवर्गाक्षरा[णा] — ङ ञ ण न मा ना बाहुल्ये मध्यमायुः पृच्छकस्य, लाभप्रश्ने मध्यमो लाभो वाच्यः ॥ २२८ ॥

उत्तरसरसंयु(जु)त्ता, सव्वे अप्पाउआ फलमुवेंति । [प० १२५, पा० २]
अहरस्सरसंजुत्ता, तुह (?सुबहुं) इ(य)च्छंति ते आउं ॥ २२९ ॥

उत्तरस्वराः पूर्वोक्तास्तैः सयुक्ता उत्तराक्षराः प्रथम-तृतीयवर्गीयाः । तद्बहुले प्रश्ने यद्रि लाभादिकं फल पृच्छति तेषां प्रभूतं फल भवति । येऽप्यायुः पृच्छति तेषामल्पमायुर्भवति(ती)-त्यादेश्यम् । त एवाधिका उत्तराक्षरा अधरस्वरयुक्ता आयुःप्रश्ने प्रभूतमायुः प्रयच्छंति । फल-प्रश्ने फल चाल्प लाभादिकमिति ॥ २२९ ॥

अहव विसण्णो आयुंमि होइ सुद्धेसु काइमाईसु ।
सत्तण्ह मेसममा(त्तसा?)दि सरसंजुत्तेसु वित्रज्जासो ॥ २३० ॥

पचवर्गन्यायेन स(सा)मान्यतः फल पृच्छकस्यायु[प० १२६,पा० १]श्रोक्त[म्] । अष्ट-वर्गन्यायेन लग्नमुत्पाद्य आयुर्विभागो नष्टविभागो नष्टजातकमिति वक्तव्यमिति । काद्यादि-सप्तवर्गेपु शुद्धेपु मेपादिराशयः । सप्त कथ ? । प्रश्नाक्षरं गृह्य आद्यक्षर त्यक्त्वा द्वितीये 'क च ट त प य श'धा(दि)वर्गाक्षराणा वर्गान्यतमं शुद्धमात्रारहित यद् वर्गमध्य याति दृष्टं स रासि(शि)-रुद्यादिः । तत्र च वर्गे यदि (यत?)मो वर्ण[ः] तति लिप्ता(कला?) शोध्या । पढस(श)को वर्णः । वर्णे पट्कलाः सो(शो)ध्याः । शुध्यमानस्य वर्णप्रमाणेन पट्कलाः शोध्याः । पड्(प्रव?)र्गस्य पंचमो रेफः, स-

[सम]वर्गेण अक्षरा, च च त त प [प ११६,पा २]वर्गाश्च तृतीयादिवर्गाः । एते स्वराः संयुक्तैव कुर्वन्ति । एवं स्वरयुक्त मात्रंशभागेन [मि] पर्यंयो ग्रहण्यः । एवं वर्गी(र्गी)मात्रं एवं समाक्षरे स्थाप्यते । ततः स्थित्वा[र]तापिस्तथा(स्थाप्यः ?) । कथं ग्रहस्य वारा त्रिगुणीकृताक्षरमाक्षरमध्यमा ... त्वापि[प ११७ पा १]ज्ञाति शिद्दप्यसि(सि) ज्ञात्य प्रमाणवस्तोता[न] विशोध्य शेषमागे कक्षरपर्येण कालिवर्गोक्तगुणेषु कर्म्म पक्षमस्ते ज्ञात्य रूपसेकं शेषपर्योयमो यथाच्छो(र्थ) ज्ञात्य पश्चिमेऽर्द्धे वाऽवस्थाप्य, उपरिवर्गेणाक्षिप- र्यं(?) पश्चिमनिगु(गुं)ण्यं शेष मागोपरि स्थाने[:] कल्पानि वर्णानि । शेषं स्वरगुण कल्पा या- क्ष[:] चावराक्षरगुणे स्थापि । 'क च ट त' चतुरक्षरवर्गगुणे [प ११७ पा २] पश्चिम । एवमर्धोभिक्षेत्र ज्ञात्य अक्षरपर्येणवर्गगुणाद्विशोध्य पूर्वपक्षस्य प्रथम-सप्तम-तृतीयापस्थे विभा(बा)ग ज्ञात्वाभिमर्श देयम् । विशो वा अक्षवर्गी ये आयन्तपाठे चतुर्वर्गश्चेषोपचयो वा तृतीयस्था(ना)नो 'च च ट त प य श ष स' वर्ग शोध्य वाऽव(प)नीयं वा । एवमानुस्या व्यापि (त्रि)मितस्थल इति । चापवल(भ) पर्येया ज्ञात्वापि[प ११८ पा १]नु(ति)रूप पश्चपञ्चात्तु पुष्पति(न्ति) प्रविश्यन्ते वा चावत्पर्योपायपोऽध्यवसायाचोदम्प(?)सम्पति पुरुष पावो देयो वा । एवं पूर्वकलातीतः कालः स्फुटः । आगामिकालपरिज्ञानार्थं च पुनः अति(ती)तकाल, एवः प्रकृतगुणाक्षरा, गर्भोद्दिसो(शो)ऽप्य वर्षोपि । इत्यतीं तथाप्याय(वी) पुरा(ना) विभावर्ष- सा(ना) प[द]वि वायति(ती) इह शेषाक्षिषु पाठा । [प ११८ पा २] इह शेषमन्तरि- वर्गोदिष(ग)न उपचयोगे सर्वे(र्व) वर्णाममिति (?) ॥ २१० ॥

आउंमि जो वियप्पो, काले देसे य होइ सो चेव ।
अणुमासिया य सवे, चरिमा सेसा समा भणिया ॥ २११ ॥

आयुषि वा कालोऽभिहिता स एव कालेऽ(के) वक्तव्यः । उपराधरैरपिकैः चिरं अ[प्प]ऽतीति वक्तव्यम् । अधराधरैरुपराग(त्न)क्षितैः हति(ई)तपिकैः अ(चि)रेण मान्यमेति मध्य वाच्यः । देसो(शो) नाम-निवसाविकल्पः । मासादिकल्प अस्मो भवतीति मते उपराधरैरपि- कैर्वयैः [चिरं] अधराधरैस्मोपराजुपक्षितैः [प ११९ पा १] अ[चि]रेण कामः । अधराधरे मापिकैर्वाऽपि कामः । अनुनासिकमपरिमर्शनाद्वैः समो कामः अघोषैरुपयुक्तस्य इति ॥२११॥

॥ कामगविकालप्रकरणं समाप्तम् ॥

इस(तइ)य-पढमेसु य जलं, बीय-चउत्थेसु अप्पपाणीयं ।
पंचमए पुण वग्गे, णत्थि जलं चेव णायव्वं ॥ २१२ ॥

प्रथमवर्ग-तृतीयवर्गोक्षराधिके प्रश्ने व्याधि जलमादेशयम् । या माता [:?] अवर्गप्रति- बद्धाः तामिरप्येवमेवेति ॥ २१२ ॥

पढम-तइएसु [पर]मा, विसिए मज्झा उ सस्ससपत्ती ।
चउ-पंचमए आयरिए(?) णत्थि सस्स से(त्ति) जाणेज्जा ॥ २१३ ॥

प्रथम-तृतीय[प० १२९, पा० २]वर्गाक्षराधिके सस्यनिष्पत्तिः उत्कृष्टा । द्वितीयवर्गाक्षराधिके मध्यमा सस्यनिष्पत्तिः । चतुर्थवर्गाक्षराधिके स्तोकं निष्पद्यते । पचमवर्गाक्षराधिके स्तोकमपि नास्ति सस्यम् ॥ २३३ ॥

पढम-तइयंमि वग्गे, सइ त्तणं तह य बीयए असई ।
चउत्थ-पंचमए वग्गंमि(ग्गे) णत्थि सइ चिय णायव्वा ॥ २३४ ॥

प्रथम-तृतीयवर्गाक्षराधिके प्रश्ने महती सती ज्ञेया । द्वितीयवर्गाक्षराधिके प्रश्ने मध्यमा सती ज्ञेया । चतुर्थ-पचमवर्गाक्षराधिके प्रश्ने सतीरेव नास्तीति निष्पत्त्यभावात् ॥ २३४ ॥

॥ वर्गस्य [प० १३०, पा० १] गंडिका समाप्ता ॥

आदा पुस्सो [य] महा, हत्थो चित्ता तहेव [साई य] ।
जिट्ठा [मू]लो एए, इ(दु)अक्खरा अट्ठ नक्खत्ता ॥ २३५ ॥

आर्द्रा-पुष्य-मघा-हस्त-चित्रा-स्वाति-ज्येष्ठा-मूला अष्टौ रे(द्व्य)क्षराणि नक्षत्राणि ज्ञातव्यानि ॥

अस्सिणि भरणि तह(य) कित्तिय, रोहिणि फणिदेवया विसाहा य ।
रेवय सवण धणिट्ठा, तिअक(क्ख)रा णव उ नक्खत्ता ॥ २३६ ॥

अश्विनी-भरणि-कृत्तिका-रोहिणी-अश्लेषा-[विशाखा]-श्रवण-धरि(नि)ष्ठा-रेवत्य इति नवनक्षत्राणि अ(त्र्य)क्षराणीति ॥ २३६ ॥[प० १३०, पा० २]

मिगसिर पुणव(ब्व)सु विन्नि, पुव्वासाढाणुराधजलदेवा ।
एए पंच वि र(रि)क्खा, चउरक्खरनामया भणिया ॥ २३७ ॥

मृगसि(शि)रः पुनर्वसुः पूर्वाषाढा अनुराधा शतभिषा एतानि पच नक्षत्राणि [चतुरक्षरनामकानि भणितानी]ति ॥ २३७ ॥

भगदेवा दगदेवा, रिक्खा पंचक्खरा दुवे एत्ते ।
अट्ट(ज्ज)म-विस्सा छक्कं, सत्तक्खवि(रि)याहिबुद्धी(वन्धु?)या ॥ २३८ ॥

पूर्वाफाल्गुनी उत्तराषाढा द्वे एते उभाव(भेऽ)पि पचाक्षरौ(रे) । अर्यमदेवता–उत्तराफाल्गुनी, विश्वदेवता–पूर्वाभाद्रपदौ एतौ षडक्षरौ । अहिमन्धुः उत्तराभाद्रपदा सप्ताक्षरा ॥ २३८ ॥

दो[अ]क्खरमादीणं, णक्खत्तग(त्ता?)णं [कमेण ?] ठावेउं ।
पण्हाइमसंखाए, [प० १३१, पा० १] णक्खत्तगणं वियाणाहि ॥ २३९ ॥

द्व्यक्षरादीना नक्षत्राणा सरा(प्ता)क्षरपर्यन्ताना क्रमेण स्थापयित्वा प्रश्नाक्षराणां आद्यक्षरसंख्ययाऽभिधावच्छुद्धा नक्षत्रगणमध्या नक्षत्रगण जानीहि । द्व्यक्षर त्र्यक्षर चतुरक्षरं पंचाक्षरं षडक्षर सप्ताक्षर चेति ॥ २३९ ॥

---

१ "गण ठावे येउये' इति आदर्शे भ्रष्टपाठ ।

अधरुत्तरक्कमेण, पच्छा अहरुत्तरेण सद्वाणं ।
णाडुण(दूणी) सवणाम, जाणेज्जा णामकरणाण ॥ २४० ॥

अधरा पश्चात् उत्तरा अघुप्य एव । प्रभाक्षरपामाधवरितो(तैर्वा) उत्तराधरस्परै(र्वा) स्पसंक्या(र्वां) सवर्षं ज्ञेयम् । प्रभाक्षरपाणा(णां)विवितेम अपराक्षरेण बहुसंख्यं सवत्र ज्ञेयम् । [प १११ प ४] प्रभाक्षरैवा(र्वा)माक्षरैर्वा पूर्वोक्ते[न] क्रमेण वर्गमानीय तेषामुत्तराक्षरे उत्तराधरा लभ्यन्ते । अधराक्षरैरधराक्षरा लभ्यवर्णा[:] प्रतिलभ्या[:] प्राप्यन्ते । तैर्नाम बोधयेदिति । अत एव अधराशि(शि)रपि ज्ञेया ॥ २४० ॥

॥ नक्षत्रवर्गोद्दिसा समासा ॥

तिहि उत्तरेहि वग्ग, उत्तरवग्गेसु [प ११२,प १] पढमयं लहइ ।
तिहि अधरेहि अधरं, अधरेसु(सुं) य तिजयं लहइ ॥ २४१ ॥

प्रभाक्षरपामातो यदा त्रयोऽक्षरा उत्तरा मात्राभिरभिहता (मात्रारहिता?) असंयुक्ता अनभिहताश्च भवंति तदा तेषां च त्रि[भि]रक्षर(रा) स आत्मीयं वर्गं लभते । प्रभाक्षरपामातो यदा त्रयोऽक्षरा अधरा मात्रारहिता [प ११२ प १] असंयुक्ता अनभिहताश्च भवंति तदा तेषां तृतीयोऽक्षरः [स] आत्मीयं वर्गं लभते ॥ २४१ ॥

उभएसुं दोसु दोण्णि वि एक्केक्कं पढमक्खरं लहइ ।
वामिस्सेसु वि एक्क, पुरिमेसु अणतर लहइ ॥ २४२ ॥

प्रभाक्षरपामातो यदा द्वौ उत्तराक्षरौ भवतः मात्रारहितौ असंयुक्तौ अनभिहतौ च त(ता)वौ द्वावपि प्रत्येकं आत्मीयं[1] वर्गं [प ११२ प १] लभते । प्रभाक्षरपामातो यदा द्वौ अधराक्षरौ मात्रारहितौ असंयुक्तौ अनभिहतौ च प्रत्येकं आत्मीयं वर्गं लभते । यदा अधर- (र क्ष)रौ पतितोऽनन्तरस्य स(उ)त्तरोत्तरः पतितः । प(वा)ऽऽलिङ्गिताभिधूमितदग्ध-कसंज्ञं वाचि ताबं सो(सो)ऽपेत(ए) । निदर्शनम्—टकारस्य गकारेणालिङ्गितस्यैका संख्या इत्यादि । इत्येक-संख्या[क]स्य ककारे [प ११२ प १] भवति । तस्मिन् ककारात(त्व)तुर्थवर्गोत्तर(वर्गं) लभते । उत्तराद्युपलक्षितत्वात्सर्वं उत्तरं लभते । स एव टकार(रो)णकारेणाक्रमोऽऽलिङ्गितेनाभिधूमित्ये(ते) । अभिधूमितस्य टकारस्य द्वे संज्ञे निवर्तेते । प्रथमा णकारसंज्ञा, द्वितीया टकारसंज्ञा । तयोरा- श्लेषे(षा)योगेन ककार-णकाराद्यारम्भ चतुर्थपञ्चममाप्नोति । स ता(च) टकाराद्युपलक्षितत्वात् पवर्गं अधराक्षरं प्राप्नोति । यदा अध[र] अपी पतितोऽनन्तरस्य उत्तरोत्तर पति[ता], तदा- ऽऽलिङ्गिताभिधूमितदग्धकसमं अभिघातं बोधये[दि]ति । [प ११४ प १] निदर्शनम्—टकारस्य द्वे ककारस्य हकारे[ण] भोत्तरेण दग्धस्य तिस्रः संख्या निवर्तन्ते । आत्मादिकाः संख्याः ? टका- रस्य संख्या द्वे यदि । आत्मनुप्रवेशस्य टकाराद्यारम्भ चतुर्थवर्गं प्राप्नोति । कः पुन[र]सौ चतुर्थवर्गोत्तराद्युपलक्षितत्वात् पवर्गमधराक्षरा(रौ)प्राप्नोति । पर्वं पको(कि?)न चतुर्थस्य वचः ।

1 'आत्मीयं वर्गमेकं' इति प्रतिपत्ता पाठः ।

अन्येषामप्यक्षराणा एवमेव क्रमो ज्ञेयः । व्यामिश्रास्तु सयुक्ताक्षराणां यत्र यत्र पतिता आत्मवर्गं लभते(न्ते) । तेषा संयुक्ताक्षराणा क आत्मवर्गं लभते ? किं योऽवसान् आहोश्विदुपरिष्ट(ष्टः ?) । [प० १३४, पा० २]उच्यते –योऽमायु(वु)पचा(र्ये)क्षर. । प्रश्ने पूर्वाक्षरौ यदा द्वावुत्तरौ भवतः, मात्रारहितौ असयुक्तौ चेति । तदा द्वितीयोऽक्षर आत्मीयं वर्गं लभते ॥ २४२ ॥

अ च त य वग्गा उत्तर-करण च हवदि [जइ ?] चउ व[ग्ग]स्स ।
होदि कमेण क ट प शा, चदुरा णीपं(यं) च णादव्वं ॥ २४३ ॥

'अ च त या'ना चतुर्णामक्षराणां बाहुल्ये(ल्य) यदा प्रश्ने भवि(ध)त्यभिहि(ह)तानां तदा चिंताया उत्तमकार्यं पृच्छतीत्यादेश्यम । लाभप्रश्ने उत्तमो भवतीति वाच्यम्(?च्य॰) अ(प्र ?)ष्टा । 'क ट प शा'ना चतुर्णासक्षरा[प० १२५, पा० १]णां प्राचुर्यं यदा प्रश्नाक्षरेषु दृश्यते अनभिहतानां तदा चिंताया नीचकार्यं पृच्छतीति वक्तव्यम् प्रष्टा । लाभप्रश्नेऽल्पलाभस्ते भविष्यतीति वक्तव्यम् । 'अ च त या' उत्तरकरणसंज्ञकम । 'क ट प शा' अधरकरणसंज्ञम् ॥ २४३ ॥

संजुत्तमसंजुत्तं, आलिंगियमादियं अ क च टा दी ।
उच्चारिज्जदि कमसो, अणुपुव्वीए करणमेदं ॥ २४४ ॥

प्रश्ने येऽक्षरास्ते सयुक्ता [असयुक्ता] वा आलिंगिता [अ]भिधूमिता तथा वा, अ क च ट त प [य] शा येऽक्षराः पचचत्वारिंशत् [प० १२५, पा० २]तेषा क्रमोच्चारण आनुपूर्वीति भण्यन्ते(ते) । आनुपूर्वीक्रम उच्यते । 'अ क च टा'दीनामष्टाना वर्गाणा क्रमोच्चारणं आनुपूर्वीक्रम उच्यते । विपर्यासोच्चारण अनानुपूर्वीकरणमिति । एतावानेव, नात्र कश्चिद् विशेषः । प्राप्तिस्तु वर्गाणां अन्यतःका(न्यका॰?) रिकयोच्यते ॥ २४४ ॥

[पढ]अं(म ?)तिल्लचउक्के त प य श वग्गे वि पावए जेण ।
एवं अना[णु]पुव्वीकरण छट्ठं मुणेयव्वं ॥ २४५ ॥

प्रथमवर्गस्य 'अ क[प० १३६, पा० १]च ट त प य शा'स्यस्य अन्य(न्त्या)क्षराश्चत्वारः 'त प य शा' एते यथा प्राप्नुवंति वर्गाणां तथा वर्णइ(यि)ष्याम्युपरिष्टा[त्] । यच तद्वर्गः(र्गाः) विलोम्येन अनानुपूर्व्या प्राप्नुवति । वर्गाः—कवर्गः चवर्ग. टवर्गः शवर्ग सि(इ)ति । अनानुपूर्व्या षष्ठं करण ज्ञेयमिति । अ क च ट त प य शा इत्यत्र पूर्वा.–'त प य शा' इत्येनानुपूर्वीक्रम इत्यर्थः । एषामेव विपर्ययोच्चारण अन्योन्य(न्नानु)पूर्वी [क्रम.] । प्राप्ति(पश्चात् ?)क्रम इत्यर्थः । [प० १३६, पा० २] पच करारण्य(करणानि प्र ?)तीतानि । तृ(त्रि)पूत्तरेषु वर्गः प्रथमकरणम् । एवं तृ(त्रि)ष्वधरेषु द्वितीयम् । उभयत्र उत्तरौ द्वौ तृतीयम् । ध(ए)केन चतुर्थं लभ्यते चतुर्थकरणम् । व्यामिश्रेयु(षु)कैरेको वर्गः लभ्यत इति पचम करणम् । यद्वा व्यामिश्र एकेन चतुर्थमस्यान्तर्गतं चतुर्थोऽय भेदः । आनुपूर्वी उच्चारणकरणं पंचमम् । अनानुपूर्वी षष्ठं करणमिति ॥ २४५ ॥

अणभिहदा संजुत्ता, पढमं पावंति अप्पणो [प० १३७, पा० १] वग्गं ।
आलिंगिया य तत्तो, हसंति एक्केक्कयं ठाणं ॥ २४६ ॥

उत्तरा अनभिहता येऽक्षरा. प्रश्नादौ अन्यतमेऽप्रतो वा त एवासंयुक्तौ(क्ता) यदा दृश्यन्ते तदा ते प्रथमवर्गाः स(स्व)वर्गं प्राप्नुवंति । यदा त्वालिंगिता असयुक्ताश्च तदा एकस्थानह्रासेन ह्रसे

(प्राप्ते ?) मानुवन्ति । नियमनम्–[कङ्कारः] खकारेणालिङ्गितस्खकारं प्राप्नु(प्नो)ति । एवं चकारः छ(छ?)कारेणालिङ्गितः छ(ट)कारं प्राप्नुवं(प्नो)ति । तथा गकारो [प ११७ अ १] घकारेणाभिधू-मितः घकारं प्राप्नुवं(प्नो)ति । चकारः झकारेणाभिधूमितः झकारं प्राप्नोति । एवं पकारो ब(फ?) कारेण दग्धः फकारं प्राप्नोति । एवमन्योऽपि [वर्ग]स्वराः संयुक्ता द्वितीयादिवर्गमेव प्राप्नुवंति । द्वितीयवर्गप्रत्ययेन द्वितीयोऽक्षर उच्यते । त एव संयुक्ता अपरालिङ्गिताः स्वात्पवरुद्धि[त]त्वात् ते यदा तृतीये स्थान टवर्गं प्राप्नो(प्नुव)ति । एवं गकारोऽपि संयुक्तो यदाऽऽलिङ्ग्यते तदा [प ११ अ १] तृतीय वर्गं प्राप्नोति । एवं संयुक्तमभिधूमिताप्नुवो(वंप्?) दग्धाः पंचममिति ॥ २४६ ॥

सद्दाणमुवेंति सदा, पत्तीस एत्थ होंति सयो(ओ)गा ।
हुस्सा य मति कमसो, चउवग्गकमेण णेयव्व ॥ २४७ ॥

हस्वा[व]नुप(नुपव ?)न्ति दग्धाः । तत्र सदा(र्वा)नुरत्नसंयोगा(ना)लिङ्गिताभिधूमितद ग्धसंयोगेन च द्वात्रिंश(त्)संयोग्य भवन्ति । चानुवन्ति निर्दिष्टमिष्यति । अतो यथा संयुक्त-लिङ्गितदग्धाभिधूमिता प्रथमे चतुर्भिर्विधै[प ११८ अ १]र्मैर्युग्मिता द्वात्रिंश(शि)द् भवति(न्ति) । ह्रिस्व(ह्रसिवा)नेऽक्षराक्षे चालिङ्गितास्ते द्वितीयं स्थानं प्राप्नुवन्ति । अभिधूमिता[ः] तृतीयम् दग्धा[ः] चतुर्थं स्थानं प्राप्नुवंति । एतत्र निदर्शनेन पूर्वक्षेपा(र्वो) वर्णितमिदो(द ब ?)त्यम् । वर्गवरण्य-मानुसारेण्यतावगतः–'हस्सा भवंति कमसो' चतुर्थवर्गक्रमेणेति एकैकं वर्गं प्राप्नुवन्ति । संयो-गस [प ११९ अ १] च प्रसंगत्वात् 'अइएओ' एते चत्वारः ह्रस्वप्रत्ययेन स्वरा गृह्यन्ते । तत्र अकारः प्रमातो अन्यत्र वा निरपेक्षा अवर्गमेव प्राप्नोति । ककारोपरिगत इकारः कवर्गं प्राप्नोति । चकारोपरिगत एकार[ः] चवर्गं प्राप्नोति । टकारोपरिगतः ओकारः टवर्गं प्राप्नोति ॥ २४७ ॥

बितिय-चउत्थो पचम-छट्ठो अण्णेसु उवहदि[प ११९ब १]आदेसा ।
लमदि अ चरिम चउक्को, तकारमाईस(सु?) णेयव्व ॥ २४८ ॥

द्वितीय आकारः चतुर्थ ईकारः पंचम [ऊकार,, षष्ठ] ऊकारः । एते चत्वारः स्वरा अन्यवर्गप्रथमानुपरि प्राप्नुवंति । के ते अन्यवर्गाक्षराः ? 'च प च शा' । तत्र चकारस्योपरिगत आकार[ः] तवर्गं लभते । पकारस्योपरिगत ईकारः पवर्गं लभते [प १ अ १]यु(य)कार स्वरेण युक्तः य(श?)वर्गं लभते । शकार ऊकारेण युक्तः शवर्गं प्राप्नोति । अकाराद्यरिमचत्वारोऽपि 'च प य शाः' चतु(त्वा)रोऽपि चरिमसंज्ञकाः । अत्र यथामि(थाम्बिम) चतुर्षे(र्ष्के) ह्रस्वानां स्वराणां संयोगेन तमप्नोति(प्नोमि)त्यत्र ॥ २४८ ॥

अणुमलिया तिहुवा था, जुया पुणावरेण णेयव्व ।
धुम सराण णिवेपो(सो), ककारमाईं[सु] त(प)ण्णेसु ॥ २४९ ॥

अनुपत्तिकरणम् आलिङ्गितापि(पी) । अनुपलिता त्रिविधा–उत्तरान(नु)पलिता अपरा-नुपलिताम । तत्र अधराक्षर उत्तरस्वरसंयुक्त उत्तरान(नु)पलितक(मध्यः ?) । चतुर्वर्गसंबंधिनेन स्वरेणाक्षरो युक्तमिनेन च वर्णो [प १ अ १]उत्तरान(नु)पलितत्वानुत्तराक्षरं लभते । स्वरा[ण्य]मरि मध्ये त्व(च)मेव स्वरमुत्तरं प्राप्नोति । उत्तराक्षरोऽप्यधरस्वरयुक्तो अधरानुपलित-संज्ञः । चतुर्वर्गसंबंधी(धि ?)तेन स्वरेणाक्षरो युक्तत्वोऽभिलाष वर्णो अधरानुपलितत्वादधराक्षरं लभते ।

स्वराणामपि मध्ये तनेव स्वरमुत्तरं(मधरं) प्राप्नोति । उत्तराक्षरोऽप्यधरस्वरयुक्तोधर............ .. . .† भिधूम्यते स द्वितीयवर्ग-मवाप्नोति । निदर्शनम्—ककारोऽभिधूमितः खकारेण [प]वर्गं प्राप्नोति । खकारोऽभिधूमितो घकारेण छवर्गं प्राप्नोति । गकारोऽभिधूमितो घकारेण जवर्गं प्राप्नोति । ककारो दग्धः हकारेण टवर्गं प्राप्नोति । एवमन्येऽप्यक्षरा[ः] पूर्वाभिहि[प० १४१, पा० २]तविस्तरक्रमेण द्रष्टव्या[ः] । ये सयुक्ताक्षरास्तेषामुपरि योऽक्षरः स स(स्व)वर्गाक्षरं लभते । उत्तरः उत्तराक्षरमधरोऽप्यधराक्षर-मवाप्नोति। एष स्वरनिवेशक(शः) सकारादिषु हकारान्तेष्वक्षरे[षु] आलिंगिताभिधूमितदग्धलक्षण उक्तः । ह्रस्वा लभते । आदिचतुष्कम्—अकारप्रभृतयः । [प० १४२, पा० १]अन्त्यचतुष्कं प्राप्नो(-प्नुव?)ति साभ्यां (?सान्त्यं) वर्गं लभन्त इति ॥२४९॥ असेवार्थस्यातिदेशार्थं कारिकान्तरमाह—

जह चेव सरवसेसो (विभागो?), ककारमादीसु धं(वं)जणेसुं पि ।
एमेव [वि] रई(इ)यव्वो, णिरंतरं जाव [उ] हकारो ॥ २५० ॥

एवमेव कर्तव्यो निरतर ककारादारभ्य यावत् हकार इत्येष वर्गलब्ध्यर्थं स्वरविभागो विज्ञातव्यो व्यंजनेषु । अयमर्थः पूर्वगाथयाऽभिहित इति नोक्तः ॥ २५० ॥ [प० १४२, पा० २] एवं अनानुपूर्वो(र्वी)प्रपचेन षष्ठं प्र(?)करणम् ॥

जो य सराण विभागं, देसेदि य सत्तमो य सो करणो ।
एमेव वंजणाणं, विभावणो अट्ठमो होति ॥ २५१ ॥

उक्तार्थातिदेशार्थं गाथेय पठिता । षष्ठमुक्तमनानुपूर्वीकरणम् । अनन्तर स्वरयोगाद्वर्ग-लब्धिरुक्ता । असौ स्वरविभागो नाम सप्तमं करणम् । सयुक्तासयुक्तविकल्पेन वर्गप्राप्तिरित्यष्टम व्यंजनविभागो नाम प्र(?)करणम् ॥ २५१ ॥

दंसेति सव[ग्ग]क्खर-संजोगं [प० १४३, पा० १] जो य सो हवे णवमो ।
परवग्गक्खरसंजोयं, दंसेदि य दसमओ करणे ॥ २५२ ॥

स्ववर्गाक्षरसयोगेन नवम करणम् । इद यथा भवति तथा पूर्वमुक्तम् । परवर्गाक्षर-संयोगा[त्] दशमं करणम् । परवर्गाक्षरसयोगोऽपि पूर्वाभिह(हि)त एव । अनयोः करणयो-र्यथाक्षरलाभ[ः] तथोपरि वर्णयिष्यामः ॥ २५२ ॥

अह उत्तराणुवलिया, हस्सा उ लहंति हस्समन(न्न)यरं ।
अहरेणऽवि हम्मंता,[प० १४३, पा० २] तेसिं चिय वग्गमण्णयरं ॥ २५३ ॥

अधराक्षरा उत्तराक्षरैरालिंगिता ह्रस्ववर्गं अन्य लभन्ते । निदर्शन यथा—खकार· ककारे-णालिंगितो दग्धः कवर्गं प्राप्नोति, तस्मिंश्चोत्तराक्षरम् । एवमन्ये(न्य)वर्गेभ्योऽक्षराः प्राप्नुवन्ति । उत्तराक्षरा अधराक्षरे[ण]अभिहन्यमाना लब्धवर्गोऽधराक्षर प्राप्नुवन्ति । यथा ककारः खकारेणा-लिंगित[ः] चवर्गे अधराक्षर प्राप्नोति, अधरानुपलितत्वात् । अथवा चास्या गाथाया अन्यथा [प० १४४, पा० १]व्याख्यानम्—अधरस्वरा उत्तरैर्ह्रस्वैः स्वरैरनुवलिता ह्रस्वस्वरमेवान्यतम लभन्ते।

† अत्रादर्शे ३–४ पक्त्यो विनष्टाक्षरा लभ्यन्ते ।

मनुपश्चिमेव कम्य(म)न्ते (?) चपरा इता(?) 'अइएउ' इत्येते चपरेण सरेणाभिहन्यमाना अपरत्वेन सर्व मनुपश्चिमभिहन्यत(न्ते) इति ॥ २५३ ॥

एव अहर घउक्के, आइल्लो पच्छिमो व एमेव ।
घउ तिय एक्कं कमसो, हस्सेसु हवंति आदेसा ॥ २५४ ॥

अदाद्युपूर्वीसंग(ग्गी)हस्य अधरचतुष्के 'कटपशाः' चत्वार आद्या मण्यन्ते [प १७४ प २] अथवा पश्चाद्भवन्तीति पश्चिमाः कटपशाः । ककारः अक्षरवर्गोऽत्र(स?) पश्चिमो भवति । एवं मे(ते)षाम् । पतप्रथमाविके प्रश्ने मध्यमनाम आदेशः । 'अचतवा' आद्याः । पुनरः पतप्रथमाविके प्रश्ने उत्तरनाम आदेशः । एवं 'अचतवा'नां मध्ये अकार-चकारविके प्रश्ने एकद्वो नाम आदेशः । एवं(वं) 'कटपशा'नां मध्ये ककार-चकारविके प्रश्ने अधमनाम आदेशः ॥ २५४ ॥

जह चेव सरनिवेसो, मणिओ तह चेव वअणेसुं पि ।
एमेव [वि]रहयव्वो, णिरंतर जाव उ हकारो ॥ २५५ ॥

अधयाऽस्य(स्या)गाथाया विस्तरेण व्यक्त्यमर्थं[प० १७५,प १]मनोज्ञक्षरोत्पादने प्रस्तारचतुष्क पंचवर्गापि तत्र प्रथमतरं यथा—विर्वेद् चतुर्थस्तुरम्भमि रूपं [न]व च । एवं विरच्यावरम्यासः—अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः । क । एवमेषा प्रथमा पंक्तिः । इ क का कि की कु कू के कै को कौ कं कः । ख । प्रथमाया अधः द्वितीया । च । च चा चि ची चु चू चे चै चो चौ चं चः । तृतीया । ट । टटा टि टी टु टू टे टै टो टौ टं टः । टव दे । चतुर्थी । प । पी पु पू पे पै पो पौ पं पः । तथा भि । च । पंचमी । य । यु यू ये यै यो यौ यं यः । यया यि यी । रू । षष्ठी । लो । लु लू ले लै लो लौ लं लः । पपा पि पी । ष । सप्तमी । शौ । [प १७५,प २] शे शै शो शौ शं शः । शशा शि शी शु शू । अष्टमी । अं अः ओ औ अ ए क ऊ ई इ आ ण । इ । नवमी । एवमेता नव पंक्तयः कथोऽधः स्थाप्याः । एवं यथा पंचवर्गेषु इदमित्थमवस्थितोऽपि—ख छ ठ थ फ ट प । ग ज ड द ब झ स । घ झ ढ ध भ व ह (?) इत्येते क्रमेणाक्षिरव पंचवर्गि[णो] पंचप्रस्तारा इर्षमीता । एतैश्च भिन्नप्रस्तारा(रै णां)रो अक्षरे यदा प्रस्तारे यदा(द)नयोन्याश्रयन भाषिः मिता(थि)न्य, इति । अथ ग[प १७६ प १] प्रस्तारो अक्षरोपनिर्थेम्याचा(द्वौ)अधरत्वेनवर्योन्य अक्षरमाये अक्षरगम्भार्थं गृह्यते । यथा गौरिवमिम् इदं कपरिज्ञात् सरतंब्धया एते प्रयाच्यौ प्रयाच्यौ एकमस्य एकमस्य [अ?]क्षरयामतो कनारस्य गजमिवुत्सिरखमो यथा—यो यो, वे, ए ऐ ओ औ अं अः इत्यादि । एवं सिद्धेम निर्दर्शनः । अप(नौ) मात्रयाबत्यानमः । शिवेदूरस्मादयत्रोगयदो प्रामो वक्तव्य इति । "ओ च तत्पर्यं[प १ ६ प २]यिमार्गे इत्येते" तौता(तो) गाथान्तर्यिमपठे दर्शनो(सिता?) । पूर्वक्त प्रस्तारस्य विविधविधेयत्व क्रियते—विर्येय(ए) प्रस्तारस्य पूरायि अक्षरमात्रो (मात्रो) प्रदय्यानीति । न्यासः—अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः । प्रथमा पंक्तिः । अकारपरस्तात्—क का कि की कु कू के कै को कौ कं कः[प १ प १] । क । च्या द्वितीया । अकारपरस्तात्—चि ची चु चू चे चै चो चौ चं चः । च चा । अकारपरस्तात्—टी टु टू टे टै टो टौ टं टः । [ट टा टि] । अकारपर-तु तू ते तै ता तौ तं तः । तता ति ती । अकारपरस्तात्—पू पे पै पो पौ पं पः । प पा पि पी पु । अकारपर-स्तात्—ये यै यो यौ यं यः, य या यि यी यु यू । अकारपरस्तात्—शे शो शौ शं शः । [प १७७ प २]

[श शा शि शी शु शू शे] एवं विरच्य(च्या)क्षरग्रहणं सिंघा(हा)वलोकित-गजविलु(लि)तकरण-द्वयन्यासेन ऊर्द्धाधस्तिर्यद्मात्राकल्पनयाऽक्षरत्रयस्य पूर्ववत् । एवं पंच प्रस्तारान्या(ण्या)लिख्य-(ख)नीयानि 'क ख ग घा' इत्यादिभिरपि वर्गैरिति ॥ एवं स्वरविभागो दर्शितः ॥ २५५ ॥

"एमेव वंजणाण, विभावणो अट्ठमो करणो" ॥ [प० १४८, पा० १]म च प्रथमस्वरपंक्तिरहितो लिख्यते – अत्रापि पचवर्गीये पंचैव शेपक्रमः समानाक्षरग्रहण चेति "दंसेति सवग्गक्खर-सजोअ" गाथा । स्ववर्गाक्षर सयोगकरणमुपरिष्टाद् ग्रन्थेनैवाभिधास्यति । लभते फकारो गुरुः । कोऽसौ ? स(स्व)वर्गमित्यादिना इति । "परवग्गक्खर" इति । तत्र सयोगोऽनेकधा [प० १४८, पा० २] स्ववर्ग-संयोगः, परवर्गसयोगः, अद्धाक्रान्तसयोगमि(ग इ)ति । अत्रैव फकारो लभत इति दर्शयिष्यति ।

एगादीया कमसो, एक्कोत्तरवड्ढिया मुणेयव्वा ।
अधरेसु य आदेसा, एस समत्तो सरविभागो ॥ २५६ ॥

इदानीं प्रागुपन्यस्तसप्तमस्वरविभागकरणचक्रव्यतिरिक्तविशेपाक्षरोपलब्ध्यर्थमाह–'एक्का-(गा)दीया' इति । य एते द्वादश स्वरा' । एते एकादिका एकोत्तरवृद्धाश्र(च) । स्थापना अत्र । [प० १४९, पा० १] अपरे आ(चा)देशाः । अक्षरलब्धिरादेशः । वर्गलब्धिर्वा । न केवलमधर-स्वरेपूत्तरस्वरेपु च । कथं ? अकार' प्रश्नादौ अनभिहतासयुक्त अकारवच(?श्च?) नवसल्यो-(ख्या)काकार भित्त्वा अकार अष्टापगमे ककारमेव लभते । तन्मध्ये उकारः पंचसख्यः तवर्गं लभते । एव आकार(रो) द्विसख्यचकार लभते । अधस्तादशमं भित्त्वा अष्टाय(प)गमे च ककारमेव । मध्ये तु ऊकारी(र.) पद्द(प्र)पवर्गं लभते । एव त्रयाणा [प० १४९, पा० २] त्रयाणां प्राप्तिर्द्रष्टव्या । एव स्वरविभाग' । उक्तः सप्तमप्रस्तारः प्रपचेनेति ॥ २५६ ॥

उत्तरसु(स)राणुवलिओ, लहइ ककारो ककारमेवन्नं ।
अहरभिहओ खकारं, सेसा पुव्वावरेणेक्कं ॥ २५७ ॥

यदुक्तमादौ व्यजनविभागाष्टमः करणमिति । तस्मादय लघुतरः प्रयोगः । उत्तरस्वराः, के ? 'अ इ ए उ' एपामन्यतमाना ककारो युक्तः कवर्गे उत्तराक्षर प्राप्नोति उत्तरानुवलितत्वात् । एवमन्येऽप्युत्तराक्षरा अनभिहि(ह)ता उत्तरस्वरयुक्ता उत्तराक्षर स्ववर्गे लभते । अधरस्वराः, के 'आ ई ऐ ओ' इत्ये[प० १५०, पा० १]तेपामन्यतमेन ककारो युक्तः चवर्गे अधराक्षरं प्राप्नोति । शेषाः पूर्वाक्षरेणैक लभन्ति । उत्तरानुवलितो(तः) अधरानुवलित इति पूर्वापरमुच्यते । एवम-न्येऽप्यक्षरा द्रष्टव्याः ॥ २५७ ॥

॥ व्यंजनविभागोऽष्टमः समासः ॥

बीओ पढमेण समं, गुरुओ चत्तारिमो तइज्जेण ।
सेसा सकायगरुया, वग्गे वग्गे भवे तिण्णि ॥ २५८ ॥

द्वितीयोऽक्षरः प्रथमेन [प० १५०, पा० २] युक्तो गुरुर्भवति । यथा 'क(क्ख)' । चतुर्थोऽक्षर-स्तृतीयाक्षरेण युक्तो गुरुको यथा 'ग्घ' इति । शेपाः स्वकायगुरुणा(काः) 'वग्गे वग्गे हवइ' तिण्णि वर्गे वर्गे त्रयस्रयो(य.) 'क्क ग्ग ङ्ङ' इत्येप क्रम' प्रतिवर्गे द्रष्टव्यः ॥ २५८ ॥

अणुणासिया य जुज्जइ, आदिल्लचउक्कए सवग्गस्स ।
सत्तट्ठमो य कमसो, सक्का(का)यगरुआ मुणेयव्वा ॥ २५९ ॥

अनुनासिका ङ ञ ण न मा ये युज्यन्ते आद्यचतुर्ष्केण वर्गे (स्पर्शेन) यथा—ङ्क ङ्ग । ञ्च ञ्ज । ण्ट ण्ड । न्त न्द । म्प म्ब । सप्तमो यकारः । अष्टमो(मः) लकारः । एतौ स-लकारयुत(तौ) ज्ञेयौ । [प १५१ अ १] यथा 'य्य ल्ल' इति ॥ २५९ ॥

पढमो तदिय वग्ग, बितिओ य चउत्थय चउत्थो य ।

पंचमओ पुण णिय, चउत्थया पावए वग्ग ॥ २६० ॥ [प १५१ ब १]

क	ख	ग	घ
१	२	३	४
च	छ	ज	झ
५	६		८
तो	थो	र्ध	ण
९	१	११	१२

प्रथमवर्गस्तृतीयवर्गी(र्गं) तृतीयवर्गी(र्गो) द्वितीयवर्गं च प्राप्नोति । द्वितीयो वर्गश्चतुर्थवर्गं लभते । चतुर्थः पञ्चमं प्राप्नोति । पंचमो वर्गश्चतुर्थं प्राप्नोति । किमत्र कारणमिति प्रोच्यते—य(यो)कार आगतो यदा ककारे दृश्यते तदा तेन ककारेण यकारे(र) आलिङ्गित इत्येव(वं) संज्ञा(ज्ञां) लब्ध्वा गकार[ः] ककारे [प १५१ ब १] न भवति । गकारस्यागतो यदा घकारे दृश्यते तदा तेन यकारेण लिङ्गित इत्येवं संज्ञा(ज्ञां) लब्ध्वा स गकार[ः] घकारे भवति । घकारस्यागतो यदा ङकारे दृश्यते तदा तेन ङकारेणाभिधूमित इति द्वे संज्ञे दृष्ट्वा घकार[ः] ङकारे भवति । ङकारे घकारेणागतः स्थितेन यदा आलिङ्ग्यते तदा एवम(मां) संज्ञां लब्ध्वा ङकारे घकारस्यागच्छते । एव मन्ये[षु] वर्गेष्वपि ये आलिङ्ग्यन्ते अभिधूम्यन्ते वा तासामप्येवमेवाभिहितक्रमेण द्रष्टव्याः ॥ २६ ॥

॥ स्ववर्गसंयोगकरणं समाप्तम् ॥ [प १५१ब २]

परवग्गक्खरगहिआ, पढम पावंति अप्पणो वग्गं ।

अणुवलिता[या]भिहता, लभंति पुव्वावरेणेव ॥ २६१ ॥

परवर्ग[ग]ह्ये(गृ)हीतः प्रथमं प्राप्नुवन्त्यात्मनो वर्गे इ(मि)ति । ये स्ववर्गाक्षरा न लभन्ते वर्गो(र्गे)प्रतिबद्धाक्षरं लभते । के ते प[र]वर्गाक्षराः ? ते उच्यन्ते । 'त था य ह' इत्येव भाषा ज्ञेयाः । अनुपलितस्य आलिङ्गितपर्यायः । [प १५१ ब १] यकारेण यदा ककार आलिङ्ग्यते तदा आलिङ्गितत्वात् एवम संज्ञा दृष्टि(दृष्टि)त्वात् ककारः ककारत्वं प्राप्नोति । चवर्गप्रतिबद्धाक्षरं च लभते । मकारः रकारे[णा(णा)]भिधूमति(त)अभिधूमितत्वात् द्वे संज्ञे दृष्टि[ष्ट]त्वा[त्] स च(च)कारः घकारमापद्यते । ककारप्रतिबद्धाक्षरं च प्राप्नोत्येवमन्येऽपि । च(ब)कारे यकारेणागतो[ऽ]स्थितेन [प १५१ ब १] दृश्यते । एवं सति संज्ञया( )पञ्चकारं लभते । टकारप्रतिबद्धाक्षरं च प्राप्नोत्येवमन्येऽपि आलिङ्गिताऽभिधूमितवर्णाः स्ववर्गप्रतिबद्धाक्षरं प्राप्नुवन्ति पूर्वा(र्व)पर्यायेणेति । आलिङ्गिताभिधूमितत्वं च दर्शयन्ति ॥ २६१ ॥

॥ परवर्गसंयोगकरणं समाप्तम् ॥

सीहावलोयिउ(अलोइओ) पुणो, दुआवि कमसो महुविया(हा)देसो ।

संयो(जो)गमियप्पेण, पावति [य] लोयणेणं मा ॥ २६२ ॥

'अ इ ए ओ' इत्येतद्(ते) स्वरे(रै)र्युक्ताः 'क च ट त प य शा'द्याः पंच वर्गाः सिंहावलोकितन्यायेन आगमो [प १५४ अ १] ये स्ववर्गाक्षरेऽ... प्राप्नुवन्ति ... ईव

औ' इत्येतेदी(तैर्द्वी)र्घस्वरैश्चतुर्भिर्युक्ताः 'क च ट त प य श' श्चाः पंच वर्गा गजविलुलितन्यायेन आत्मनोव(ऽध)स्ताद्यः अक्षरोऽनन्तरः त प्राप्नुवन्ति। निदर्शन च – ककारो ह्रस्वस्वरयुक्तः अकारं प्राप्नोति । चकारोऽपि ककारं प्राप्नोति। एवं सर्वत्र सिंहावलोकितन्यायेन द्रष्टव्यम् । दीर्घस्वरयुक्तः कफारश्चकार प्राप्नोति । चकारो दीर्घस्वरयुक्तः टकार प्राप्नोति । टकारोऽपि [तकार प्राप्नोति ।] तकारोप्य(ऽपि)[पकार] प्राप्नोत्येवं पंचवर्गप्रतिबद्धाक्षरा [प० १५४,पा० २] गजविलुलितन्यायेन द्रष्टव्य(व्या) इति ॥ २६२ ॥

पत्तो वि परं ठाणं, आइल्लं यं पुणो पलोएइ ।
सिंहावलोइकरणं, एयारसमं मुणेयव्वं ॥ २६३ ॥

प्राप्नोति(प्तोऽपि) पर स्थानं तस्मात्परस्थानात् पूर्वं यस्मादालोकयति तथाभिहितं सिंहावलोकितकरणं एकादशमं भवति । सिंहश्चातिक्रान्त पश्यतीति ॥ २६३ ॥

॥ सिंहावलोकितकरणं समाप्तम् ॥ [प० १५५, पा० १]

लोएइ पुव्वभणियं, करणो गयविलुलिओ महा भणिओ ।
सूरकरविपर(पवि?)ट्ठो, गउ व्व सरपाणियं सरए ॥ २६४ ॥

लोलयति पूर्वोक्त गजविलुलितमहाकरणोऽग्रिम अक्षर पश्यति स्व(सू)रकराहतो गज इव सरसिकाल(शरत्काल?) इव अग्रिममक्षर पश्यति । लोल्यत्यन्विपतीति वाक्यार्थः ॥ २६४ ॥

चत्तारि मूलवत्थुणि, वहं(हवं)ति म(ग)यविलुलियस्स करणस्स ।
सरवंजणेण [प० १५५,पा० २] कमसो, सवग्ग-परवग्गजोए य ॥ २६५ ॥

चत्वारि मूलवस्तूनि भवन्ति गजविलुलितस्य करण[स्य] । स्वरवस्तु, व्यञ्जनवस्तु । व्यञ्जनान्यक्षराणि । स्ववर्गसयोगवस्तु, परवर्गसयोग[व]स्त्विति ॥ २६५ ॥

तत्थ सरवत्थु तिविहो, संकड-वियडा य मीसया चेव ।
पढमाण विवि(ति)य तहि(इ?)या, चरिमाणं आदिमा पक्खा ॥ २६६ ॥

तत्र स्वरवस्तु त्रिविधः । सकट, [प० १५६, पा० १] विकटं, सकटविकटं चेति । प्रथमाः 'क च ट त प य श'स्तै(र्द्वि)तीयाना 'ख छ ठ थ फ र प'णामुपरिगतैः सयोग' । 'ग ज ड द य ल स' 'घ झ ढ ध भ व ह'नामुपरिगतेस्व(तैश्च)सयोग' । चरिमा 'ङ ञ ण न म'स्तैः सर्वेपामेवाक्षराणा उपरिगतैः सयोगश्चेति सूत्रम् ॥ अथवाऽस्या गाथाया अन्यथा व्याख्या क्र(क्रि)यते— "तत्थ सरवत्थु[प० १५६, पा० २] तिविहो" इति। सकटाः 'अ इ ए उ अ'। विकटाः 'आ ई ऊ अः'। सकट-विकटाः 'ओ ऐ औ' । पचवर्गीयो(या) वर्गा अपि । प्रथम-तृतीयौ सकटौ । द्वितीय-चतुर्थौ विकटौ । पचमः सकट-विकट इति ॥ 'पढमा विदियाण चरिमा' इत्यत्र स्वरेषु प्रथम-द्वितीयौ 'अ आ', चरिमौ 'अ अ''। एषा तुल्यता । कथ? अकारस्य अनुस्वारः सपक्षत्वात् सकट एव भवति । अकार-विसर्जनीयौ द्वादशम. स्वपक्षः, अतो विकटोऽयम् । सपक्षता परस्पर मैत्री-भाव इति ॥ २६६ ॥

आइल्लाण दोण्ह, सवे वि सरा हवंति सरिपक्खा । [प १५ ब १]
पचम-चउत्थ-णवमा, होइ(हों)ति इकारस्स सरपक्खा ॥ २६७ ॥

आद्यौ द्वौ स्वरौ 'अ आ' तयोः सर्वे स्वराः सवर्णा मित्राणि । पंचम उकारः, चतुर्थ ईकारः, नवम ओकारः । इत्येते त्रय इकारस्य मित्राणि ॥ २६७ ॥

अट्ठम-दसमा दोण्णि वि, एते सत्तमसरस्स सरिपक्खा ।
एकारस-बारसमा, छट्ठो हवंति उकारसरिपक्खो(क्खा) ॥ २६८ ॥

अष्टम ऐकारः दशम औकारः । इत्येते द्वौ सप्तमस्वरस्य एकारस्य मित्राणि । एकादश-बार[सम', द्वादशमकार] 'अः' षष्ठकार ऊ(ऊ)कारः । एते त्रय(य) ऊकारस्य मित्राणि ।

ऐकारौकाराण, दुविहा [प १५७ ब २] दिट्ठी उ होइ नायव्वा ।
जइ उपराणुवलिया, लहंति तो संकडा एवे ॥ २६९ ॥

ऐकारस्य औकारस्य च द्विविधा संज्ञा संकट(टा) विकटा चेति । यदोपरवस्तुपरिज्ञाने भवति । 'अ इ ए व' इत्येते चत्वारः संकटसंज्ञाः । एतेषामु[रि]गतैः 'क च ट त प य श'ांधाः पंचवर्गाक्षराः संकटसंज्ञा भवंति । एतैरेव संकटवर्णै[प १५ प १]र्युक्तयोः अक्षरयोः विद्यमानाभिघाते द्योतिते सति योऽक्षर उत्पद्यते संकटविधिना अन्यत इति संकट संज्ञा ॥ २६९ ॥

अधरबलेण य वियडा, उपरमहरेण मिस्सया होंति ।
अहरुत्तरेण मि(मी)सेस, लक्खेज्ज बलाबलविसेसं ॥ २७० ॥

'आ ई औ' इत्येते त्रयो विकटसंज्ञाः । एतैर्युक्ताः 'क च ट त प य श'ांधाः पंच[प १५८ प १]वर्गा(र्गाः) संकटसंज्ञा भवन्ति । एतैरेव विकटवर्णैर्युक्तानां अक्षराणां विद्यमानाभिघाते द्योतिते सति योऽक्षरः तत्रे आकारयुक्तः स आलिंगितत्वात्स्वरसंख्यया द्वितीयवर्णं प्राप्नोति । यथा ककार आकारेणालिंगितो द्वितीयवर्णं प्राप्नोति । (†यथा ककार आकारेणालिंगितो द्वितीयवर्णं प्राप्नोतीति ।) [प १५९ ब १] तस्मिन्नेवाक्षरो(रा)नुपलक्षितत्वादपराक्षरम् । स एव ककार इका-रेणाभिधूमितो वर्गाभिमतस्वरसंख्यया वर्णं प्राप्नोति । तस्मिन्नेवाक्षरानुपलक्षितत्वादपराक्षरम् । स एव ककार उकारयुक्तेन दह्यते । पुनः स वर्गे मिश्रितस्वरसंख्यया वर्णं प्राप्नोति । तवर्गे उत्तराणुपलक्षितत्वादुत्तराक्षरम् । एभिः स्वरैरत्र(भि)भिरन्योऽन्य[प १५९, प २]क्षराः पूर्वोक्तन्यायेन द्रष्टव्याः । 'ऊ ऐ औ' इत्येते त्रयः संकट-विकटसंज्ञाः । एतैर्युक्ताः पूर्ववर्गा[णाः] पंच संकटविकट संज्ञा भवन्ति । एतैः संकटविकटैर्यु(यु)क्तानां अक्षराणां अभिघाते द्योतिते सति संकट-विकट प्रकारेण योऽन्योऽक्षरो लभ्यते स संकट-विकटसंज्ञः । आलिंगिताभिधूमितदग्ध-अक्षरवर्णाक्षरमिव पूर्वाभिह(हि)ता । कथमेतत् प्रश्नलक्षणविशेषमिति । येऽक्षरा आलिंग्यन्तेऽभिधूम्यन्ते दह्यन्ते वा तेषाम[प १६ ब १]भिघातयुतानां वा(णः) संख्याधिको भवति स बलीयान् ऐन्द्रौका यस्तैः ॥ २७० ॥

---

† कैवल्यमयादन् व्यर्थी द्विरुक्तः पाठोऽयम् ।

जो य इकारो(रे) गमओ, इ(ई)कारम्मि वि वियाण सो चेव ।
जो ए(य उ?)कारे गमओ, क(ऊ)कारे हवइ सो चेव ॥ २७१ ॥

इकारस्य ईकारस्य च द्वयोरस्ति प्रीतिस्तद्बहुले प्रश्ने 'प्रीतिर्मे भविष्यतीति ?' पृच्छन्तो-(तो:ऽ)स्ति प्रीतिरित्यादेश्यम् । ए(उ)कारस्य [ऊकारस्य] च द्वयोरस्ति प्रीतिस्तद्बहुले प्रश्ने 'प्रीतिरनेन सह मे भविष्यतीति ?' चिन्ता(न्त)यतोऽस्ति प्रीतिरित्यादेश्यम् ॥ २७१ ॥ [पृ० १६०, पा० २] ।

ऊकारे जं वुत्तं, छट्ठे एयारसे य बारसमे ।
होइ सरे तं सव्वं, सव्वत्थ बलाबलविसेसो ॥ २७२ ॥

उकारस्य ऊकारेण अकारेण च सानुस्वारेण सविसर्गेण च सह प्रीतिः । उकाराधिके प्रश्ने एषां स्वराणामन्यतमे दृष्टे प्रीतिं पृच्छतोऽस्ति प्रीतिरिति वाच्यम् । बलाबलविशेषश्च द्रष्टव्यः । अनभिहतो अलियां (बलीयान्) अभिहतो दुर्बलः । प्रथमो भेदः स्वरवस्तु ॥ २७२ ॥

इदानीं [पृ० १६१, पा० १] व्यजनविभागकरणस्यादेशं कुर्वन्नाह–

जो चेव पुव्वभणिओ, संजोओ वंजणाण परि(य वि?)भाओ ।
सो चेव इहं सव्वो, गयविलुलियवत्थुए बीए ॥ २७३ ॥

य एव पूर्वोक्तव्यजनानां स्वराणा च सयोगविभागस्त्याक्षरोत्पत्तौ उपरिष्टाद् वर्णयिष्य-(ष्य)ति गजविलुलितन्यायेन । एव द्वितीयो भेद(दो) व्यजनविभाग उक्तः ॥ २७३ ॥

लहति ककारो गरुओ, सवग्गयं(ग्गिय?) खकारसंजुओ च-वग्गं ।
अणुणासियसंजुत्तो, कमसो पावेइ ट-तवग्गं(ग्गे) ॥ (१)

लभति गकारो गरुओ, सवग्गयं(ग्गिय?) घकारसंजुओ प-वग्गं ।
अणुणासियसंजुत्तो, कमसो पावेइ य-स-वग्गं(ग्गे) ॥ (२)

लल(भ)ति चकारो गरुओ, [पृ० १६१, पा० २] सवग्गयं छकारसंजुओ ट-वग्गं ।
अणुणासियसंजुत्तो, कमसो पावेइ त-प-वग्गे ॥ (३)

लहइ जकारो गरुओ, ज(स)वग्गयं झकारसंजुओ [य]वग्गं ।
अणुणासियसंजुत्तो, कमसो पावेइ स-क-वग्गे ॥ (४)

लहइ टकारो गरुओ, सवग्गयं ठकारसंजुओ त-वग्गं ।
अणुणासियसंजुत्तो, कमसो पावेइ प-य-वग्गे ॥ (५)

लहइ डकारो गरुओ, सवग्गयं [पृ० १६२, पा० १] ढकारसंजुओ स-वग्गं ।
अणुणासियसंजुत्तो, कमसो पावेइ क-च-वग्गे ॥ (६)

लहइ चकारो गरुओ, सवग्गयं थकारसंजुओ प-वग्गं ।
अणुणासियसंजुत्तो, कमसो पावेइ य-स-वग्गे ॥ (७)

लहइ दकारो गरुओ, सवग्गयं धयारसंजुओ क-वग्गं ।
अणुणासियसंजुत्तो, कमसो पावेइ च-ट-वग्गे ॥ (८)

लहइ पकारो गरुओ, सवग्गय[प १११ प २]फकारसंजुओ य-वग्ग।
अणुणासियसंजुत्तो, कमसो पावेइ स-क-वग्गे ॥ (९)
लभइ य(प)कारो गरुओ, सवग्गयं ह्(म)यारसजुओ स(ष)-वग्ग।
अणुणासियसंजुत्तो, कमसो पावेइ ट-त-वग्गे ॥ (१०)
लहइ प(म)कारो गरुओ, सवग्गयं रयारसंजुओ स-वग्ग।
अणुणासियसंजुत्तो, कमसो पावेइ क-च-वग्गे ॥ (११)
लहइ लकारो गरुओ, सवग्गयं वयारसंजुओ ट-वग्ग।
अणुणासियसंजुत्तो, कमसो पावेइ त-प-वग्गे ॥ (१२)
लभइ स(ष)कारो गरुओ, सवग्गयं स(प)कारसंजुओ क-वग्ग।
अणुणासियसंजुत्तो, कमसो पावेइ च-ट-वग्गे ॥ (१३)
लहइ सका[प ११२,प १]रो गरुओ, सवग्गयं हकारसंजुओ त-वग्गं।
अणुणासियसंजुत्तो, कमसो पावेइ प-स(य)-वग्गे ॥ (१४)

चतुर्दशानामपि गाथानां [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पंक्ति। क, क, क्ख, [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] ग्ग, ग [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible](घ) ॥१॥ [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] स(म) [illegible] ॥२॥ [illegible]—[illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], घ(घ) [illegible], [illegible], [illegible] ॥ ३ ॥ [प ११२,प १] [illegible]—च, ठ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] घ(घ) [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] ट ॥ ४ ॥ [illegible]—[illegible] [illegible], प, [illegible] घ(घ), [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible](न्त), [illegible], [illegible] ॥ ५ ॥ [illegible]—[illegible] [illegible], [illegible], घ(घ), [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ६ ॥ [illegible]—[illegible] [illegible] [illegible], [illegible], घ(घ), [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] ॥ ७ ॥ [illegible] [illegible] ॥

[गाथाचतुर्दशकानुसारेण कोष्ठकमिव स्थापितम्—]

[illegible]	क	क्ख	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	ग्ग	ग	ग्घ	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

एवं तु सभावत्था, लहंति अह अणुवलाभिघाएणं ।
दिट्ठा पुव्वावरओ, लहंति तो णंतरं वग्गं ॥ २७४ ॥

एवं तु स्वभावत एव प्रस्तारेण लब्धिरुक्ता । प्रश्नाक्षराणामधरधातु(रानु?)वलितत्वाधाक्षरं लक्षयेत् । उत्त[प० १६४,पा० १]रान(नु)वलितत्वाश्च आलिंगिताभिधूमितदग्धाश्च तमेवाक्षरं यथोक्तं यथा लक्षयेत् । पूर्व्या(र्वे?)क्रमेण पूर्वोक्ताभिघातसु(शु)द्धेन आलिंगितत्वाद्नन्तरं वर्गं लभते । अभिधूमितत्वात् द्वितीयवर्गम्, दग्धत्वात् तृतीयं वर्गं यथा प्राप्नुवति तथा पूर्वोक्तम् । स्वरवर्गाक्षरसयोगवस्तु तृतीयम् ॥ २७४ ॥ इदानीं चतुर्थो भेदः -[प० १६४,पा० २]

परवग्गक्खरगरुया, अ(ज)त्तियमित्तेहिं पण्ह आइल्ला ।
ते सव्वे पत्तेयं, पढम पावंति संठाणं ॥ २७५ ॥

प्रश्नाक्षराणां मध्ये यावन्मात्राः परवर्गाक्षरगुरवो दृश्यन्ते तेषामुपरि अक्षरो यः स प्रत्येक प्राप्नोत्यात्मनो वर्गम् । उत्तरानुवलितत्वात् उत्तरं, अधरानुवलितत्वादधरमिति ॥ २७५ ॥

सेसा सकायगरुया, सव्वे वि लहंति अप्पणो वग्गं ।
सेसाण वि एस कमो, सव(व्व)त्थ वलावलविसेसो ॥ २७६ ॥

स्वकायगुरव(रवः) सर्वे [प० १६५,पा० १] यथा प्राप्नुवन्त्यात्मनो वर्गं तथा उक्तमेव । शेषाणामेष क्रमः । शेषग्रहणेनालिंगिताभिधूमितदग्ध(ग्धा) भण्यन्ते । ते यथा स्व[व]र्गं प्राप्नुवन्ति तथा पूर्वमेवोक्तम् । सर्वत्र बलाबलविशेषो द्रष्टव्यः । इत्यभिहन्ता बलीयानी(नि)ति ॥२७६॥

॥ चतुर्भेदं गजविलुलितं समाप्तम् ॥

पण्हाइमसंखाए, जाणिज्जा तंमि वग्ग एक्केक्क ।
नामक्खरं तु लब्भइ, एवं से[से]सु वि कमेणं ॥ २७७ ॥

प्रश्नादिमस्याक्षरस्य चाऽनवि(भि)हतस्य या सख्या तया नामा[प० १६५,पा० २]क्षरसंख्या ज्ञेया । स एवानभिहतः स्ववर्गाक्षर लभते । एवं चेऽपि तत्रावलिप्ता अभिहतास्तेऽपि स्ववर्गाक्षर लभन्त एव ॥ २७७ ॥

जत्थऽट्ठगाइरित्ता, हवंति तत्थऽट्ठयं विसोहेत्ता ।
जं तत्थ हवइ सेसं, तं मिंद्रा(?)णामक्खरवग्गे ॥ २७८ ॥

प्रश्नाक्षराणा निपतिताना यदा एभ्यो अक्षरेभ्योऽभि(ति)रिक्ता [अ]क्षरा भवन्ति तदा तेषा या सख्या साऽऽद्याक्षराष्टकमध्ये शोधयित्वा अष्टभिभा(र्भा)गमपहृत्य लब्धावसि(शि)ष्टाश्च द्वौ वर्गौ लभ्येते । [प० १६६,पा० १]कवर्गादिगणनया च तौ गण[यि]तव्यौ । उत्तराक्षरबहुले प्रश्ने उत्तराक्षरो लभ्यते । अधराक्षराधिके प्रश्ने अधराक्षर इति ॥ २७८ ॥

एवं तु सभावत्थे, कीरइ णामक्खराण उप्पत्ती ।
अणुवलिहा(या)भिहया वि य, पुव्वावरवग्ग एक्केक्कं ॥ २७९ ॥

प्रमाक्षराणां मध्ये ये अक्षरा अनभिहताः समाक्षरा उच्यन्ते तैः समाक्षरसंख्याभिःपरार्ध-णाम(र्णनाम)अक्षराणांसंख्यानिर्देशा । एवं तं अक्षरा(रा) सन् अपराक्षरं प्राप्नोति अपराक्षरेऽपि अपराक्षरम् । [प १६६ प १]अभिहतप्रयत्नेन आलिंगिताभिधूमितदग्धा मु(ब)म्यन्ते । तेष्वपि एवेषु अभिघातसंख्या गुणाकारोत्तरेषु यस्मिन् यस्मिन् वर्गे ते मुख्यसेनाः, तस्मिन् तस्मिन् वर्गा-क्षराः प्राप्नुवन्ति । पूर्वोक्ते आलिंगिताभिधूमितदग्धक्रमेणैव संख्याकरणं नाम ॥ २७९ ॥

अट्ठयवग्गस्स भवे, गुणयारो सेसयाण एक्केक्क ।

परिहायत कमसो, [प १६ प १] चरिमो एक्केक्कओ सरिसो ॥ २८० ॥

सप्तयामष्टभिर्गुणाकारः । 'कखगघङां' सप्तभिर्गुणाकारः । 'चछजझा(ञ)णां' षड्भिर्गुणाकारः । 'टठडढा(ण)णां' पंचभिर्गुणाकारः । 'तथद[ध]नां' चतुर्भिर्गुणाकारः । 'पफबभा(म)मां' त्रि(भि)भिर्गुणाकारः । 'यरलवां' द्वाभ्यां गुणाकारः । 'शषसहानां' एके(कै)न गुणाकारः । प्रमाक्षरसंख्यापिण्डमेवैतत्त्व प्रमाक्ष[प १६ प १]राणामक्षरे अवर्गसंख्यया १ संगुण्यमानमिमोणे इत्ये अल्पसेना च अवर्गनिर्वर्गे ज्ञेया । निदर्शनं यथा—यायकमायपक्षः अकारवर्गप्रतिबद्धः । तत्प्रतिबद्धस्य(स्य) अष्टसंख्यागुणाकारः । तस्मात् प्रमाक्षरपिण्डं अष्टभिर्गुणयेत् । [प १६ प १] यदा प्रमाक्षरे अक्षरे ठकारे वर्णो(र्गे)ऽक्षरपञ्चगुणाकारेण प्रमाक्षरसंख्यापिण्डं गुणयेत् । यदा प्रमाक्षरे दकारः तदा तद्वर्गप्रतिबद्धैकसंख्यया प्रमाक्षरसंख्यापिण्डं गुणयेत् । एवमन्येषामपि प्रमाक्षराणामुक्तगुणाकारेण प्रमाक्षरसंख्यापिण्डं गुणयित्वा [व]हुभागमाहरेत् । प्रवीणोऽप्यस्तु(सु)[प १६८ प १]निवार्यमुपरि यावता पुनर्दर्शयिष्यति ॥ २८० ॥

पण्हस(क्ख)रा उ सव्वे, आइम-गुणकारसंगुणा काउं ।

वग्गट्ठएण विभाए, सेसाण(णा)मक्खररुप(प्प)त्ती ॥ २८१ ॥

प्रमाक्षराणां निष्पादितानां ययोरी अष्टसप्तगुणाकारेण गुणयेत् । सर्व-प्रमाक्षरसंख्यापिंडं(डे) यदा आदौ स्वरा(रो) नास्ति तदा आद्यक्षरस्य संबंधी यो(यो) वर्गः तस्य गुणकारेण गुणयेत् । अष्टभिः भागेऽपहृते स(स्मा)दवशि(शि)ष्टा(ष्ट) च-वर्णो ज्ञेयः । ये वर्गा उत्पा-देयाः प्रथमक्रमेण अक्षरोत्पत्तिर्ज्ञेया ॥ २८१ ॥ [प १६६ प १]

पत्तेयं पत्तेय, एव पण्हक्खरेसु सव्वेसु ।

णियगुणकार(रे?) गुणिए, अट्ठविहि(ह)त्ते हवइ वग्गो ॥ २८२ ॥

प्रमाक्षरपिंडसंख्यागुणनिजगुणाकारगुणितं(तां) भाजयित्वा अष्टाभिर्वर्गरूपं यत्र शेषाव पूर्वं वर्गो ज्ञेयः । पूर्वगाथाया(यां) निवारणमेव[मि]दं न पुनः विस्तरेणाख्यातम् ॥ २८२ ॥

षिताए मुट्ठीए, णामे णक्खत्त सुमुणि(मिण)संखाए ।

अट्ठविभाए खेत्ते, काले लेहक्खरेसुं च ॥ २८३ ॥

चिन्तायां मुष्टौ नाम्नि नक्षत्रे स्वप्न आयाक्षरसंख्यया नानाक्षरसंख्या ज्ञेया । [प १६६ प १] अष्टविभागः । 'अष्टविभागे क्षेत्रे' इत्येतदुच्यते—पूर्वाऽऽग्नेयी याम्या नैर्ऋती वारुणी वायव्या कौबेरी ऐशानी—इत्यष्टविभागं क्षेत्रम् । तत्पूर्वनिर्दिष्टक्रमेणा(ण) अष्टप्रमाणं वक्तव्यम् । लेखा-क्षराणि प्रमाक्षरैः पूर्वाभिहि(हि)तक्रमेणैव विज्ञेयाः ॥ २८३ ॥

अण्णेसु एवमाइसु, कज्जेसु जहट्ठि(च्छि ?)एसु सव्वेसु ।
गुणकारं काऊणं, अट्ठ[प० १७०, पा० १]विहत्ते हवइ इच्छा ॥ २८४ ॥

अन्येष्वेवमादिषु कार्येषु यथेप्सितेषु प्रश्नाक्षरसंख्यापिंडमाद्यक्षरवर्गाक्षरसंख्यया गुणयित्वा अष्टविभक्ते वर्गो लभ्यते । तमेव पूर्वोक्तमर्थं वर्णितवान् ॥ २८४ ॥

॥ गुणाकारप्रकरणं समाप्तम् ॥

पंचण्ह वि वग्गाणं, जस्स य वग्गस्स पण्हमादीए ।
वग्गक्खरं पईसइ, तंमि हु णामक्खरं [प० १७०, पा० २] वग्गे ॥ २८५ ॥

पंचानामपि वर्गाणा 'क च ट त प य श'धानां यस्य वर्गस्य प्रश्नादौ अक्षरोऽनभिहतो दृश्यते तस्मिन् वर्गे एको नामाक्षरो लभ्यते ॥ २८५ ॥

एवं तु सहावत्थे, बलाबल-विसेसओ जहा पुव्वं ।
एवं विपक्ख(क्क)राणं, गमओ संपक्ख(क्क)राणं च ॥ २८६ ॥

स्वभावस्थाः प्रश्नाक्षरा अनभिहतास्तेषु बलाबलविशेषेण यस्मिन्[प० १७१, पा० १] वर्गे ते अक्षराः प्रतिबद्धास्तान् वर्गान् प्रति लभन्ते । विपक्ख(क्क)राः, के ? अधराक्षराः । संपत्कराश्चोत्तराक्षराः । उत्तरैरुत्तराक्षरा लभ्यन्ते । अधराक्षरैरधराक्षरा इति ॥ २८६ ॥

वग्गक्खरंमि दिट्ठे, तत्तो वग्गक्खर(रा) पवत(त्त)न्ति ।
पढमं तइयं छट्ठं, नवमं च तहक्खरं जाणे ॥ २८७ ॥

वर्गाक्षरा इति । त एव प्रश्नाक्षरा उच्यन्ते । तेभ्यः प्रश्नाक्षरेभ्यः वर्गा[प० १७१, पा० २]-क्षराणामुत्पत्तिर्ज्ञेया । ये वा प्रथम-तृतीय-षष्ठ-नवम-प्रश्नाक्षरा अनभिहता भवन्ति तदा ते स्ववर्गप्रतिबद्धाक्षर प्राप्नुवन्ति ॥ २८७ ॥

॥ उत्तराधरानी(णी)ति विभागप्रकरणं समाप्तम् ॥

णामक्खराण एसा, पयडी णामाण च्चेव य पहाणा ।
तह करणमाइयावि य, पंच य नामा भवे इत्थ ॥ २८८ ॥

नामाक्षराणामेष सभावो वर्णितप्रधानः । तथा करणमातृकाप्र(प्र)हणेन पंचचत्वारिंशदक्षरा भण्यन्ते । तेषामपि पंचभिः प्रकारैः अक्षरा लभ्यन्ते आलिंगिताभिधूमितदग्धोत्तराधरैः ॥२८८॥

णवम[प० १७२, पा० १]ट्ठमेसु एक्केक्कयं तु एक्कं उरेसु(रस्स ?)संठाणं ।
एमेव य कंठाणं, सत्तट्ठमएहि सह यो(जो)गो ॥ २८९ ॥

उरस्य(स्याः), कण्ठ्याः, जिह्वामूलीयाः, तालव्याः, [मूर्द्धतालव्याः ?], दन्त्याः, उ(ओ)ष्ठ्याः, अनुनासिकाः, मूर्द्धन्या इति नव स्थानानि वर्णानाम् । तत्र नामान्या(?)मूर्द्धन्याः, तेषामन्यतम आलिंगितः यदा तदा अनुनासिकानां मध्ये अक्षर लभति । अनुनासिक्यानामन्यतम आलिंगित

ओष्ठ(ष्ठ्या)नां मध्येऽक्षरं लभते । ओष्ठ(ष्ठ्या)नामन्यतम आलिंगितः [दन्त्यानां मध्येऽक्षरं लभते ?] दन्त्यानामन्यतम आलिंगितः मूर्धतालव्यानां मध्येऽक्षरं लभते । मूर्धतालव्याना-मन्यतम आलिंगितः तालव्यानां मध्ये[प १७१ प १]ऽक्षरं लभते । कण्ठ्यानामन्यतम आलिं-गितः मूर्धन्यानां मध्येऽक्षरं लभते ॥ २८९ ॥

पंचम-चउत्थयाणं, जीहामूलेहि होइ सह जोओ ।
तालव्वाण ओगो, पढम-तइज्जेसु दोसु पि ॥ २९० ॥

मूर्धन्यानामन्यतम अभिधूमितः मूर्धतालव्यानां मध्येऽक्षरं लभते । अनुनासिकानामन्य-तम अभिधूमितः दन्त्यानां मध्येऽक्षरं लभते । ओष्ठ्यानामन्यतम अभिधूमितः मूर्धतालव्यानां मध्ये[प १७२, प १]ऽक्षरं लभते । दन्त्यानामन्यतम अभिधूमितः तालव्यानां मध्येऽक्षरं लभते । मूर्धतालव्यानामन्यतमः अभिहतः जिह्वामूलीयानां मध्येऽक्षरं लभते । तालव्या अभिधूमिताः कण्ठ्यानां मध्येऽक्षरं प्राप्नुवन्ति । जिह्वामूलीया [अ]भिधूमिता कण्ठ्यानां मध्येऽक्षरं प्राप्नुवन्ति । कण्ठ्यानामन्यतम अभिधूमित(तो) मूर्धन्यानां मध्येऽक्षरं लभते । कण्ठ्यानामन्यतम अभिधूमित [प १ १ प १]अनुनासिकानां मध्येऽक्षरं प्राप्नोति । उत्तरा उत्तरमेव अधरा त्व(स्व)धरमे-(वे)ति कर्मसंगीतकम अ(असा ?)मिस्रका तु(त ?)दप्यत्युरूपमिति ॥ २९० ॥

बि-तिय-चउत्थेहि सम, संजोगो होइ मुद्धतालूणं ।
पंचम-चउत्थएण, जोगो वग्गाण दन्तोहिं ॥ २९१ ॥

मूर्धन्यानामन्यतमो दग्धो दन्त्यानां मध्येऽक्षरं प्राप्नोति । अनुनासिकानामन्यतमः [प १७४ प १] दग्धो मूर्धन्यानां मध्येऽक्षरं प्राप्नोति । ओष्ठ्यानामन्यतमो दग्धः तालव्यानां मध्येऽक्षरं प्राप्नोति । दन्त्यानामन्यतमो दग्धः जिह्वामूलीयानां मध्येऽक्षरं लभते । मूर्धतालव्या-नामन्यतमो दग्धः कण्ठ्यानां मध्येऽक्षरं लभते । तालव्यानामन्यतमो दग्ध कण्ठ्यानां मध्येऽक्षरं लभते । जिह्वामूलीयानामन्यतमो दग्धः [प १७४ प १] मूर्धन्यानां मध्येऽक्षरं लभते । कण्ठ्या-नामन्यतमो दग्धः अनुनासिकानां मध्येऽक्षरं लभते । कण्ठ्यानामन्यतमो दग्धः ओष्ठ्यानां मध्ये-ऽक्षरं लभते । उत्तराण्युत्तराणि लभन्ते । अधराण्यध[रा]धराणि[इति] कर्मसंगीतको-क्तम् । न गर्[भा]नुरूपम् ॥ २९१ ॥

ठट्ठाण पुण यो(ओ)गो, पंचम-छट्ठेहि होइ वग्गेहिं ।
छट्ठेण सत्तमेण, ओगो अणुणासियाण च ॥ २९२ ॥

कर्मसंगीतक पद्भिह(भि)र्व तथैव व्याख्यातं अर्थतो गाथैवमिति न दृष्टा(विदथ) ॥२९२॥

सत्तट्ठमेहि दोसु वि, मुद्धणा(मुद्धण्णाण)ण [प १७५, प १] तहेव सो यो(ओ)गो ।
वग्गो वग्गो एव, तिण्णि तु णामक्खरा पढमे ॥ २९३ ॥

आलिंगितत्वादेवाक्षरं लभते । अभिधूमितत्वात् द्वितीयं दग्धत्वात्तृतीयमक्षरमिति । एता-साम(सामेत ?)पि गाथार्थो व्याख्यातः । अतो न लिख्यत इति ॥ २९३ ॥

सो(सा)हाविहा य एव, पयडीए पढमओ हवइ णामं ।
उत्तरमहरपदट्ठे, यत्नायत्नमिसेसओ विहए ॥ २९४ ॥

प्रश्नाक्षराणां मध्ये येऽक्षरा अनभिहतास्ते स्वभावतः प्राप्नुवन्ति आत्मवर्गस्तै(र्ग तै)र्नाम-निर्देशः कार्यः। उत्तरच[प० १७५, पा० २]तुष्क इति 'अ च त या' निर्दिश्यन्ते। अधरचतुष्क इति 'क च ट त प य शा (क ट प शा ?)ना' निर्देशः। 'अ च त या'नामन्यतमस्य 'क ट प शा'नामन्यत-मोऽग्रतो यदा भवति तदा स्ववर्गप्रतिबद्धाक्षरं प्राप्नोति। यदा 'क ट प शा'नामन्यतमस्य 'अ च त या'नामन्यतम(मा)क्षरोऽग्रतो भवति तदा स्ववर्गप्रतिबद्धाक्षरं लभते ॥ २९४ ॥

॥ स्ववर्गप्रकरणं समाप्तम् ॥

मूलस्सरा सवग्गे, एक्कं जुत्ता लभंति सट्ठाणो(णे)। [प० १७६, पा० १]
परवग्गक्खरगरुजुत्ता, वितियं च अणंतरं अहरं ॥ २९५ ॥

मूलस्वराः ?। के ते ? त्रयः। तैर्युक्ताः प्रश्ने 'ङ ञ ण न मा' 'र ल षाः' एषामेव मध्येऽन्य-तमाक्षरं लभते। मूलवर्गप्रतिबद्धत्वात्। पचमवर्गः स्ववर्गो मूलस्वराणाम्, शेषाः परवर्गाश्चत्वारः, तैर्युक्तास्त एव मूलस्वराः। येनाक्षरेण युक्तस्तस्याक्षरस्यानंतरो यो वर्गोऽधस्तद्वर्गप्रतिबद्धमेवाक्षरं प्राप्नुवति ॥ २९५ ॥

उत्तरे(र)वग्गे एक्कं, बीयं पुण होइ जत्थ संजुत्ता।
अहरंमि लभे तइयं, दुविहा दिट्ठी उ आकारे ॥ २९६ ॥ [प० १७६, पा० २]

दृष्टिप्रयोगसयुक्तेन असयुक्तेन च आकारेण एवमुपरिप्रयोगेष्वपि अक्षरलब्धि[:] द्विधा भवतीति। उत्तरैर्वर्गैः 'क च ट त प य शाः, ग ज ड द ब ल सा' श्च। एषामन्यतमाक्षरस्योपरिगते मूलस्वर अनतरमघोवर्गं प्राप्नोति। उदाहरणम्—ककारस्योपरिगतो मूलस्वरः चवर्गं प्राप्नोति। चकारस्योपरिगतः मूलस्वरः [प० १७७, पा० १] च(ट ?)वर्गं प्राप्नोति। टवर्गस्योपरिगतो मूलस्वरः तवर्गं प्राप्नोति। एवमन्येष्वपि द्रष्टव्याः। एषामेव प्रथम-तृतीय-वर्गाक्षराणां प्रश्नाया यदग्रतो मूलस्वरोऽसयुक्तो यस्याग्रतो व्यवस्थितस्तस्यैवाक्षरस्य पूर्वस्य सबंधिवर्गं प्राप्नोति। एवं द्वितीय-चतुर्थवर्गाक्षराणां अग्रतो(तः) स्थिता मूलस्वरा असयुक्तास्तृतीयव[प० १७७, पा० २]र्गमतः प्राप्नुवंति। यथा खकारस्याग्रतो प्य(व्य)वस्थितो मूलस्वर[:] टवर्गं प्राप्नोति। छकारस्याग्रतो व्यवस्थितो मूलस्वर द्वितीयवर्गं प्राप्नोति। एवमन्येऽपि द्रष्टव्याः। आकाराव(रः क)कार-स्योपरिगत आकारः तस्याधोऽनतर द्वितीयवर्गं प्राप्नोति। तस्य द्वितीयस्य वर्गस्याधराक्षरमनंतरं लभते। यथा ककारस्योप[प० १७८, पा० १]रिगतः अकारश्चवर्गं प्राप्नोति। चवर्गेऽप्यधराक्षरं प्राप्नोति। एवं चकारस्योपरिगतः आकारः टवर्गं लभते। अत्राप्यधराक्षरम्। एवमन्यत्रापि। एवं ककारस्योपरिगतः स्थितः अकारः चकारमेव लभ्य(भ)ते। तथा अधराक्षरोपरिगत स च वा(आ ?)कारोम(ऽ)नतर द्वितीयवर्गं प्राप्नोति। तस्या(स्य) द्वितीयवर्गानतरमेवाधराक्षरं [प० १७८, पा० २]प्राप्नोति। एवमनंतरोऽप्यसयुक्तः। उदाहरणं यथा—पकारस्योपरिगत आकारः ककारवर्गेऽप्यधराक्षर प्राप्नोति। एवमन्येऽपि द्रष्टव्याः ॥ २९६ ॥

एवत्तु(न्तु) अहरवग्गे, एक्कं वितियं तु जत्थ संजुत्ता।
धातुस्सराण एवं, दुविहा दिट्ठी उ पयडीए ॥ २९७ ॥

द्वितीय-चतुर्थवर्गयोरक्षरयोर्मे अक्षरा मातुलरयुक्ताये कयोवर्गे द्वितीयानंतरं द्विवर्णं प्राप्नुवन्ति । यथा नकार ककारेण जकारेण वा युक्तः ककारं प्राप्नोत्येवमन्येऽपि द्रष्टव्याः । तयोरेव मातुलरयोरन्यतरो यथाऽपराक्षराणां कमर्गा[प १०५,प १]मवलर्गयुक्तः, यथा क्षे वायं प्राप्नोति । यथा लकारसामर्थो पकाररतः पकारं लभते । द्विविधा इतीति प्रयोग [ग]च्छते ॥ २९७ ॥

हस्सस(स्स)रा य भवे(सवग्गे?), पुक(ढ) तु लभंति जत्थ संजुया ।
बिसीयवग्गो सव(सव)ग्गं, लभति अक्खरेण पढमिचे(हि?) ॥ २९८ ॥

हस्वस्वरमस्वराः 'अ इ उ ए । 'क च ट त प य शां'ओं 'ग ज ड द ब ब सां'ओं चात्मसमाक्षरे [ण] युक्ताः स्ववर्गं पदं प्राप्नुवन्ति । यथा ककार पकारेण युक्तः ककारं प्राप्नोत्येवमन्येऽप्यक्षराः स्ववर्गं प्राप्नुवन्ति । संयुक्तासंयुक्तेस्तस्या प्राप्तिः । द्वितीयवर्गाक्षराणां 'ख छ ठ थ फ र'वर्णानां अन्यतम[प १०५,प २]क्षरे यथा(ता)न्यतमहस्वस्वरयुक्ताः तत्रावर्गाक्षीयवर्णं प्राप्नोति । यथा ककार चतुर्थं 'अ इ उ ए' अन्यतमेन युक्तः तृतीयवर्णं प्राप्नोति । एवं वर(?)युक्तानुक्तिस्तासु पदक्षरं प्राप्नुवन्ति । 'क ट' वर्णौ च तृतीयम् । एवमन्यत्रापि ॥ २९८ ॥

॥ व्यञ्जनस्वरप्रकरणं समाप्तम् ॥

जीया(हा)मूलिमकंठाइसंजुओ लहइ तिण्णि उ हकारो ।
उवरप[प]त्तिपढके, एक दो दोसु चरिमेसु ॥ २९९ ॥

'अ इ उ ए' इत्येते स्वराः कंठ्याः । 'क ख ग घा' जिह्वामूलीयाक्षराः । एषामन्यतम-मध्ये अन्यतरं कंठ्यस्वरयुक्तजिह्वामूली[प १० प १]यानां मध्येऽक्षरं प्राप्नोत्युपरपर्या(द्यं) चकि-मत्वात् । स्वरं स्वयमहत्रिगुणमहयेन 'अ ग घ घा' लभ्यते । द्वेयो चतुर्थो अन्यतमोऽक्षरः, 'अं अः' पदौ चरिमौ तयोरन्यतरेण युक्तमेव युक्ताक्षरं लभ्यते । यथा 'अं' अनेन युक्ते ककारे इति ककार एव लभ्यते । 'अः' अनेन युक्त ककारो लभ्यते । एवमन्येऽपि द्रष्टव्याः । 'लभइ तिण्णि उ हकारो' तृतीये वर्गे तमर्थयित्वाः जिह्वामूलीयैरिति ॥ २९९ ॥

एमेव सेसयासु वि, दोसु(सुं) दोस(सुं) तु जासु संजोओ(ओगो) ।
पयडीसु तासु एसो, हवइ हकारस्स [प १० प २]अहिलासो ॥ ३०० ॥

एवं 'अ इ उ ए'स्वराः ककार-खकारयुक्तयो द्वौ गकार-घकारयपयौ वेषामन्यतमाक्षरो-ऽन्य[न्य]ेन चरिमेन स्वरेण युक्तो येन युक्तः स चिर(चरि)मः स्वमेव(वा)क्षरं लभते । इत्थिमर्थे हकारः साधुकारो वा आत्मानमेव लभते समागताम् ॥ ३०० ॥

उवरपयडीसु एवं(गं), लहंति जासु(सुं) च संजुया तासु ।
एक्केक्कमेव कंठा, उद्धाणं उवरिमि(मि) जाव ॥ ३०१ ॥

तिर्यमेव(पर्येव) तु यो(यौ)वर्गस्य(प)रिमौ 'अं अः' । ओष्ठ्यानां पैशाचां मूर्धन्यानामर्थं वाऽन्यतमोऽक्षरं स्वरस्वरार्थं चतुर्थामन्यतमेन युक्तमेवाक्षरं लभते । स्वरस्तथा 'अ इ उ ओ' । [प १०२,प १] ॥ ३०१ ॥

अहरासु लभे एक्कं, एक्केक्कं चेव जासु जं जुज्जो ।
अहरपयडीसु चउसु वि, दंतादी जाव मुद्धाण्हा (मुद्धण्णा ?)॥ ३०२ ॥

दंत्यानामोष्ठ्यानामनुनासिकानां मूर्द्धन्यानां मध्येऽधराक्षरो वाऽधरस्वराः 'आ ई ऐ औ' एषां चतुर्णामन्यतमेन युक्तोऽधराक्षरोऽधराक्षरमेव लभते । उत्तरोऽप्येषां दंत्यादीनां मध्ये एवैरेवाधराधरस्वरैर्यदा युक्तो(क्त)स्तदा अधराक्षरमेव लभन्ते(ते) ॥ ३०२ ॥

॥ स्वभावप्रकृतिस्समाप्ता ॥

पढमसरा आइल्ला, तिण्णि वि उट्ठा य हो(हों)ति पयडीओ ।
दोसुत्तरपयडीसुं, दोन्नि य सो अक्खरे लहइ ॥ ३०३ ॥

प्रथ[प० १८१, पा० २]मस्वरा आद्यास्त्रयः 'अ आ इ' ओष्ठ्याक्षरैः सार्द्धमेषां स्वराणां मध्ये अकार इकारश्च द्वावुत्तरौ अ(आ)कारोऽधरः । ओष्ठ्याक्षराणा उत्तरयोरन्यतरो यदा भवत्य-ग्रतः, तदा उत्तराक्षर प्राप्नोति । एषां मध्ये ओष्ठ्याक्षराणामन्यतमस्याग्रतो दृष्ट आकारोऽध-रस्तेषां मध्येऽधराक्षरमेव प्राप्नोति ॥ ३०३ ॥ [प० १८२, पा० १]

अका(उत्त?)रसर(रा ?)उ कंठा, दोण्णि वि चरिमा हवंति पयडीए ।
एवं एस विसग्गो, तिण्णि हु नामक्खरे लहइ ॥ ३०४ ॥

कंठ्या उत्तरस्वराः – 'अ इ ए ओ' चत्वारः । तेषामनुस्वारेण अकारेण सविसर्गेण च सह प्रीतिः । एवमेष तृ(त्रि)संख्यः अकारः तृ(त्रि)नामाक्षर प्राप्नोत्येतयो(यो)परिगाथया व्याख्या-स्यति ॥ ३०४ ॥

अवस(धरु ?)त्तरासु एक्केक्कयं तु एक्कं च ख(ल ?)भइ मिस्सासु ।
पंचम-छट्ठा [प० १८२, पा० २] तह सत्तमा य मो तइउ(?)पयडी ॥ ३०५ ॥

प्रश्ने यदा अधरवर्गौ द्वौ अधरौ द्वितीयवर्गाक्षराणा यदा प्रश्ने 'ख छ ठ थ फ र पाः' स्ववर्गा-क्षराणां चातरद्वौ दृश्येते तदा तयोरन्तरोऽक्षरो लभ्यते । यथा खकारस्याग्रतः चकारोऽवस्थितः । एवमन्यत्रापि । तथा उत्तरेषु प्रथमवर्गाक्षराणां 'क च ट त प य शा'ना तृतीयवर्गाक्षराणां च 'ग ज-ड द ब ल सा'ना यदा प्रश्ने द्वावक्षरावनतरा वा द्वौ दृश्येते तदाऽनयोरेको लभ्यते । यथा कका-रस्याग्रतो गकारः । एवमन्यत्रापि । एव च अधरोत्तर लभत इति । उक्ता एव मिश्रा स्थितिः । यदा प्रश्ने एक उत्तरः आद्यः तस्याग्रतोऽधरोऽथवाऽधर आद्यः (तस्याग्रतोऽधरोऽथवाधर आद्यः) तस्याग्रत उत्तरस्तदाभिघाते [प० १८३, पा० १] शुद्धे सति द्वयोरक्षरयोर्यो बलवान् [स] लभ्यते एक एव । पंचम उकारः, षष्ठ ऊकारः, सप्तम एकारः, इत्येतेषा त्रयाणा इकारेण सह प्रीतिक्कति(प्रकृति)रिति प्रीतिरुच्यते ॥ ३०५ ॥

कंठाअ(ऽ)णुणासि उव्व(? ट्ठा), तिण्णि वि तइयस्स सो लहइ (?) ।
दोसुत्त[र]पयडीसुं, एक्कं अहरासु तह जाण ॥ ३०६ ॥

---

१ मूलादर्शे द्विवारं लिखितोऽयं पाठः । २ आदर्शे 'सत्तमाय मीयमा तइउ' इति पाठः ।

अकारस्य एकारस्य उकारस्य वा कंठ(ण्ठ)स्य परस्परतोऽनंतरं इकारो दृश्यते, तदा स्मेव पूर्वस्वरमवाप्नोति । अनुनासिकानां 'ङ ञ ण न मा'नां ओष्ठ्यानां 'फ ब भ व मा (पे ष व मा)'र्वं च परस्परमनन्तरमस्योपरिगत इकारस्तमेवाधरं लभते । प्रमोदप्रकृतिरुक्ष । प्रकृतिरस्मो मैत्री-पर्यायः । 'एक अधराय्य जायेद(ति) इत्येतदुपरिष्ठा[त्] व्याख्यास्यति ॥ १०६ ॥

ईका[प १०३ प २]रस्स पउत्था, मुद्दा(द्धण्णा ?) सेसया जहा तइए।
अक्खरलंभो जो उत्तरासु सो चेव अहरासु ॥ १०७ ॥

मकारस्य मूर्धन्या(न्य)स्थानतः स्थित ईकारे(र) पेकारं लभते । ओकारो(रस्त्?)मूर्धन्यस्थानतोऽन्य स्थित ईकार ओकारस्तेव प्राप्नोति । 'र ष णा'नां(णां) मूर्धन्यानामन्यतमस्योपरिगता ईकारस्तमेवाधरं प्राप्नोति । ईकारस्य यथाऽक्षरलाभ उक्तः,[प १०४ प १]एवं इकारस्याप्यधरमव्यवेरुतः ॥ १०७ ॥

जा ईकारे पयडी, चउरो सा चेव होइ उ(ए) उकारे ।
अक्खरलंभो जो पढमस्स सो चेव पुयस्स ॥ १०८ ॥

चतुर्थस्य ईकारस्य उकारेण सह प्रीतिः । प्रीतिप्रकृतिः समानपर्यायः । 'ई दे औ' इत्येतेषां च(त्र)याणां अन्यतमस्थानतोऽनंतरस्थित उकारस्तमेव पूर्वस्वरं लभते । 'ए [ओ]प' नामन्यतम-स्या(स्य) व्यञ्जनयो[प १०४ प १]रुप उकारस्तमेव लभते । पंचम उकारो यथाधरं लभते इकारोऽपि तथैव प्राप्नोति ॥ १०८ ॥

जीहामूलियकंठा, तालव्वाणुणासिया य एकारे ।
अक्खरलंभो तइए, जो वि य सो चेव इहयं पि ॥ १०९ ॥

जिह्वामूलीयानां कंठ्यानां तालव्यानामनुनासिकानां चान्यतमाक्षर एकारेण युक्त उपरि गतेन तमेवाधरं एकारः प्राप्नोति । कंठा(ण्ठा)नामपि स्वराणां अन्यतमस्थानंतरमनतोऽवस्थित एकारस्तमेव पूर्वस्वरं लभते । एकारेण ओऽक्षरलाभः ॥ उक्तः । ऐकारेण वक्ष्यति ॥ १०९ ॥

अधर(उर)कंठोट्ठा पता, मुद्ध(द्धण्ण)णुणासिया[प १०५ प १]य अट्ठमए।
अक्खरलंभं इयं, तं पि य अहराहरे लहइ ॥ ११० ॥

उरस्यानां कंठ्यानां ओष्ठ्यानां दंत्यानां मूर्धन्यानां अनुनासिकानां चान्यतमाक्षर(ए)मर ऐकारेण युक्तोऽपराधरं प्राप्नोति । स्वराधरोऽन्येषां मध्ये ऐकारेण युक्तोऽधराधरमेव प्राप्नोति । एतां मध्ये ये स्वराणे(णे)नामन्यतमस्थानता(तः) स्थित ऐकारस्तमेव स्वरमाप्नोति ॥ ११० ॥

जीहामूलियकंठा, उट्ठा अणुणासिया य ऐकारे ।
अक्खरलंभो एमो, लहइ तद्अस्स गमणेण ॥ १११ ॥

जिह्वामूलीयाः 'प फ ज झाः' । कंठ्या 'अ इ ए ए' । ओष्ठ्या [प १०५ प १]'दे प व भा' । अनुनासिका 'ङ ञ ण न मा' । एतामन्यतमस्य अन्योपरिगत ऐकारस्तमेवाधरं लभते । स्वराना-मपि अन्यतमोऽनन्तरमवस्थितस्तमेव पूर्वस्वरं लभते । यथा तृतीय इकारो उकारमवाप्नोति । एकारोऽपि तथैवेति ॥ १११ ॥

मुद्धणुणासियकंठा, तालवा मुद्धतालदंतोट्ठा ।
दस[म]सरे पयडीओ,[प० १८६,पा० १] अक्खरलंभं जहम्मा(ठ्ठम?)ए॥३१२॥

मूर्द्धन्यानुनासिककंठ(ठ्य)तालव्य-दंतोष्टाः(ष्ठ्याः) । तेषामन्यतमोऽधराक्षरस्योपरिगतः दश-मस्वरसमेवाक्षर लभते । उत्तराक्षरोपरिगतः उकारोऽधराक्षरमेव लभते । एतत्प्रतिबद्धस्वराणां 'आ ई ऐ' अन्यतमस्याग्रतो वंच(ऽनन्त)रमवस्थित औकार[ः] पूर्वस्वर लभते । यथाष्टमं[प० १८६,पा० २] ऐकारोऽक्षरं लभते । एवमौकारोऽपीति ॥ ३१२ ॥

मोत्तुं पंचमपयडी, एकारसमस्स सेसया अट्ठ ।
एक्केक्कं दंतोट्ठे, मुद्धण्णे अक्खरे एक्कं ॥ ३१३ ॥

उरस्याः कण्ठ्याः जिह्वामूलीयाः तालव्या मूर्द्धतालव्या दंत्या औष्ठ्या मूर्द्धन्याः । एषां अष्टानां अन्यतमोऽक्षर एकादशमः(श?)स्वरेण युक्त तमेवाक्षरं लभते । (एषामष्टानां यः [प० १८७,पा० १] एकादशस्वरेण युक्तः तमेवाक्षरं लभते ।) एषामष्टाना य एकादशस्वरेण युक्त स एव लभ्यत इति ॥ ३१३ ॥

जो हका(क्का)रे म(ग)मओ, पुह(बु)त्तो सो इहं विसग्गंमि ।
एयस्स णविर(वरि?)पयडी, संखा वि य तच्चिया चेव ॥ ३१४ ॥

अकारः सानुस्वारः यथा ह्र(?)कार प्राप्नुवन्ति(प्राप्नोति) । एव हकार[ः] सविसर्ग-हकारमेव प्राप्नोति । द्वादशानां [प० १८७,पा० २] स्वराणा यस्तु (वस्तु?)भावः स वर्णितः । प्रकृतिशब्दः स्वभावपर्याय इति ॥ ३१४ ॥ **समाप्त** ॥

अणभिनगगव(हते य अ ?)यारे, अ ज खा ट च त था वाय(?) एकारे ।
अभिघाइ .... †अट्ठमे पंचमंमि ॥ ३१५ ॥

अकारेण अ सा म ह्ना त ट(?)ककारस्यल(स्याग्र)तो व्यवस्थितेन ककार एव लभ्यते । अकारे अनभिहते व(च)कारस्याग्रतः स्थिते चकार एव लभ्यते । आकारे अनभिहतं(ते) टकारस्यामतः स्थिते टकार एव लभ्यते । अकारे अनभिहते तकारस्याग्रतः स्थिते तकार एव लभ्यते । अकारे अनभिहते यकारस्याग्रतः स्थिते [प० १८८,पा० १] यकार एव लभ्यते । एकारेण युक्ते खकारो(रे) ककारो लभ्यते । एकारेण युक्ते छकारे व(च)कारो लभ्यते । एकारयुक्ते ठकारे टकारो लभ्यते । एकारेण युक्ते थकारे तकारो लभ्यते । एकारेण युक्ते रेफे यकारो लभ्यते । अष्टमस्य ऐकार[स्य एकार]स्येव संयोगफलमुक्तम् ॥ ३१५ ॥

अणभिहते आकारे, ख छ ज झ त ह अभिहयंति दो चरिमा ।
ठ थ ट त ईकारंमि, उ फ र प य चउरो [अ?]आरंमि ॥ ३१६ ॥

खकारस्याग्रतः स्थितेन अनभिहतेन अ(आ)कारेण खकारो लभ्यते । छकारस्याग्रतः स्थितेन अनभिहतेना[प० १८८,पा० २]कारेण छकारो लभ्यते । जकारः सानुस्वारः जकारमेव लभ्य(भ)ते । (†छकारस्याग्रतः स्थितेन अनभिहतेनाकारेण छकारो लभ्यते । जकार. सानुस्वारः जकारमेव

१ द्विर्लिखित पाठ एष लेखकप्रमादात् । † आदर्शेऽत्र ५–६ अक्षरपरिमिता पङ्क्ति शून्याऽत्र विद्यते ।

लभ्यते[ौ]) मकारः सविसर्गो हकार एव लभ्यते । ठ(ठ ी)कार इकारयुक्तो टकारं लभते । ढकार ईकारयुक्तः ढकारमेव प्राप्नोति । चकार चकारयुक्तः पकारं लभते । रेफ चकारेण युक्तः चकारं लभते ॥ ११६ ॥ [प १०९ प १]

जइ पढम-सत्तमाण, तइज(य)णवमाण सइ य सट्ठाणे ।
पढम-तइयाणुणासिय, पञ्चमा य छट्ठमि अणमिहए ॥ ११७ ॥

गकारस्सामतोऽनंतरमवस्थितः अनभिहत इकारो गकारमेव लभते । जकारस्सामतोऽनंतरमवस्थितः अनभिहत इकारो जकारमेव लभते । डकारस्सामतोऽनंतरमवस्थित अनभिहत इकारो डकारमेव लभते । दकारस्सामतोऽनंतरमवस्थितः [प १०९,प २] अनभिहत इकारो दकारमेव प्राप्नोति । ब(व ी)कारस्सामतोऽनंतरमवस्थितो(तः) इकारो(रः) ब(व ी)कारमेव लभते । ङकारस्सामतोऽनन्तरमवस्थितेन अनभिहत इकारो[ङकार]मेव लभते । ञकारस्सामतो णऽनंतरमवस्थितेन [अन-भिहतः ?] इकारः ञकारमवाप्नोति । णकार ण(णो)कारसंयुक्तः णोकारं लभते । ठकारः ओकार-संयुक्त[प ११ प १]मोकारं लभते । ठकार ओकारसंयुक्तः डोकारं लभते । बकार ओकार संयुक्तः [बो]कारं लभते । मकार ओकारसंयुक्तः पोकारं लभते । रेफ ओकारसंयुक्तः बोकारं लभते । मकार ओकारसंयुक्तः स(सो)कारं लभते । यत्र औकारेणा(ण्य)भिहतः मकारस्यामतोऽनं-तरमवस्थिते मकारमेव लभते । नकारो[प ११ प १]ऽनभिहतो झकारस्यामतोऽनंतरमवस्थितः झकारमेव लभते । झकारोऽनभिहत ञकारस्यामतः स्थितः अकारं लभते । ओकारोऽनभिहत इकारस्यामतः स्थितः इकारं लभते । नकारोऽनभिहतः सानुस्वारस्याकारये(र)स्यामतोऽनंतर-मवस्थितः अनुस्वारमेव नकारं लभते । यथा पूर्वगाथया प्रथमस्य ककारस्य, सप्तमस्य च चकारस्य प्रयोगः कृतः, तथा तृतीयस्य इकारस्य, नवमस्य ओकारस्य प्रयोगो वर्णितः गाथार्थेनापि गाथान्तरेण्यर्थः ॥ ११७ ॥

अभिघाइएसु छट्ठे, इवइ इयारो हु अट्ठमो णवमो । [प १११ प १]
ङ ढ चतु तइयअणुणासा, दसमसरे तिण्णि ऊ मवमा ॥ ११८ ॥

ङकारोऽस्तोऽनंतरमवस्थितेन ओकारो(रेणा)भिहतो इकारं प्राप्नोति । मकारस्यामतो ऽनंतरमवस्थितो मकारः चतुर्थवर्णं प्राप्नोति । ढकारो दशमस्वरेण युक्तस्तीव्रं ड(ढो)कारं प्राप्नोति । 'नवमा'स्य पकारपर्याय [?] ॥ ११८ ॥

पढम-तइयाणुणासा, पञ्चमा य दोण्ह पि अंतिमसराण ।
माया(पार्श्वा)मइओ करणो, णामेण य(?) दूयमोहिओ एस ॥ ११९ ॥

प्रथमो ककारः अनुस्वारेण अकारेण युक्तो ककारं प्राप्नोति । ककारः सविसर्गः ककारं लभते । तृतीयो गकारः सानुस्वारो[प १११ प २] गकारं लभते । चकारः सविसर्गः चकारमेव लभते । पकारः सानुस्वारः पकारं प्राप्नोति । ब(झ)कारः सविसर्गः झकारमेव लभते । झकारः सानुस्वारः झकारं प्राप्नोति ॥ ११९ ॥

॥ द्वाविंशतिकरणं समाप्तं । जन्ममोहिर्नं नाम समाप्तम् ॥

---

† एतद्गाथांश मध्ये द्विर्लिखितोऽयं पुस्तके ।

उत्तरसरसंजुत्तो, जइ उत्तरवंजणो य दीसेज्जा ।
पावइ य पढमवग्गं, अहरस्सरसंजुओ तइयं ॥ ३२० ॥

उत्तराः के ? 'अ इ ए उ' इत्येतेषां चतुर्णामन्यतमेन युक्त[ः] प्रथम-तृतीयवर्गाक्षराणां क च ट त प य श ा ना, ग ज ड द व ल सा ना अन्य[प० १९२,पा० १]तमोऽक्षर आत्मीयं वर्गं लभते। यथा 'कि' क ख ग घा नां मध्येऽक्षर प्राप्नोत्युत्तरानुवलितत्वात् उत्तराक्षरम् । एवं सर्वत्र । अधरस्वराः के ? 'आ ई ऐ औ' । एषां चतुर्णामन्यतमेन स्वरेण युक्तः तेषां प्रथम-तृतीयवर्गाक्षराणां अन्यतमाक्षर तृतीयं वर्गं प्राप्नुवन्ति(प्नोति) । यथा 'की' ट ठ ड ढा नां तृतीयवर्गाक्षराणां मध्ये ढकाराक्षरं प्राप्नोति ॥ ३२० ॥

उत्तरसरसंजुत्तो, पंचमवग्गं तु पावए अहरो ।
अहरस्सरसंजुत्तो, सत्तमं पावए अहरो ॥ ३२१ ॥

उत्तरस्वराः के ? 'अ इ ए उ' । एतेषां [प० १९२,पा० २]चतुर्णामन्यतमेन युक्तोऽधराणां ख छ ठ थ फ र ष ा णा, घ झ ढ ध भ व ह ा ना चान्यतमाक्षरः पंचमवर्गं लभते । यथा खकारस्योपरिगतोऽकारः पंचमवर्गाक्षर प्राप्नोति । उत्तरानुवलितत्वादुत्तरम् । एवमन्येऽपि । तथा घकारोऽप्युत्तरस्वरसयुक्तः पंचमवर्गाक्षर [प० १९३,पा० १]लभते । एव सर्वेऽधरा उत्तरस्वरसयुक्ताः पंचमवर्गं प्राप्नुवन्ति । अधरस्वरा 'आ ई ऐ औ' एतेषां चतुर्णामन्यतमेन युक्तः द्वितीय-चतुर्थवर्गाक्षराणामधराक्षराणामन्यतमः सप्तमवर्गं प्राप्नुवन्ति(प्नोति) । यथा खकारो अधरस्वरसयुक्त[ः] स[प्तम]वर्गं प्राप्नोति । अधरानुवलितत्वादधरः । एवं छका[प० १९३,पा० २]रोऽधरस्वरसयुक्त[ः] सप्त[म]वर्गं प्राप्नोति । तत्राप्यधरम् । तथाऽधरोऽप्यधरस्वरसयुक्त[ः] सप्त[म]वर्गं प्राप्नोति । तत्राप्यधराक्षरम्(?) । एव फ र षा इति । तथा घकारः सप्तमवर्गं प्राप्नोत्यधरानुवलितत्वादधराक्षरम् ॥ ३२१ ॥

एवं लभंति पढमं(मे), वग्गे सरवंजणेहि संजुत्तो(त्ता) ।
उत्तर-अहराणुवला, लभंति पुव्वावरं वग्गं ॥ ३२२ ॥

यथा प्रथमवर्गे सु(स्व)राक्ष[र]सयुक्ता लभंति अक्षरान् तथाभिहित पूर्वमेव । ते च स्वरा उत्तरानुवलितत्वादुत्तराक्षर प्राप्नुवति । [प० १९४,पा० १] अधरानुवलितत्वात् अधराक्षर प्राप्नुवंतीत्येतदपि पूर्वोक्त पुनरनेन स्थिरतामापादयता वर्णितम् । पूर्व इत्युत्तराक्षर उच्यते । अपर इति चाधरो भण्यते ॥ ३२२ ॥

उत्तर-अहरसरो वा, लग्गो जो जंमि वंजणे होज्ज ।
उत्तर-अहराणुवला, लभंति तइ(ई)यसरं तत्तो ॥ ३२३ ॥

उत्तरस्वरा(र) इकारः, अधरस्वर ईकार[ः] उत्तराक्षरै[र]धरो(?) विलग्न उत्तराक्षरैः उत्तरो विलग्न[ः] तस्मात्तृतीयस्वर प्राप्नोति । इकार[.?] तृतीयस्वर प्राप्नोति ॥ ३२३ ॥

॥ उत्तराधरसंपत्करणं समाप्तम् ॥

१ 'उत्तराक्षरैरुत्तरो विलग्न , अधराक्षरैरधरो विलग्नः' इति मन्ये मूलानुसारेण । नि० शा० १०

पढमो तइओ य सरो, पण्हाईए सम फकारेण । [प ११४ ब १]
अह दीसइ सो लस(भ)ए, कवग्गए अक्खरं एक्कं ॥ ११४ ॥

प्रभाक्षरणामादौ फकारस्यालिङ्गितस्याभितोऽन्तरं यदा प्रथमः स्वरः अकारो दृश्यते तदा ककार[ः] अक्षरं प्राप्नोति । तृतीयस्वरेण युक्त[ः] खकार आलिङ्गितप्रभाक्षराणां कवर्गैकाक्षरं लभते । स्वराद्युपलक्षितत्वात् उत्तरम् । एवमन्येऽपि प्रथम-तृतीयवर्गाक्षरा[ः] प्रभाक्षरप्रथमाभिलिप्ता अक्षरे(रा)भितोऽन्तरमधलिप्ता इकारेण वा युक्तः(क्ताः) स्ववर्गाक्षरं लभन्ते ॥ ११४ ॥

एएहि चेव सहिओ, लहइ लकारो चवग्ग एक्केक्कं ।
तइय-चरिमा [प ११५ ब १]सवग्गे, लहइ धकारो टवग्गंमि ॥ ११५ ॥

प्रथमस्वरेण अकारेणाभितोऽन्तरमधलिप्तेन इकारेण वा युक्त लकार[ः] चवर्गैकाक्षरं लभते । स्वराद्युपलक्षितत्वादुत्तरम् । तृतीयवर्गाक्षराणां ग ज ड द ब ङ ञ ण न मां चरिमाणां ङ ञ ण न मा नां मध्यतमोऽक्षरे अकारेऽभितोऽन्तरमधलिप्ते इकारेण युक्त[ः] स्ववर्गैकाक्षरं लभते । स्वराद्युपलक्षितत्वादुत्तरम पकारे(र)ण अकारेऽभितोऽन्तरमधलिप्ते इकारेण वा युक्ते धकार(रः) टवर्गैकाक्षरं प्राप्नोति स्वराद्युपलक्षितत्वादुत्तरमेवेति । [प ११५ ब २]गाथाद्वयस्यापि अर्थं व्यक्तव्य प्रकारेण दर्शने(र्शय)ति रचना — क ख(च) लि ग यदा एव सर्वे(र्वै) प्रभाक्षरयुक्ते यदा तदा प्रथम स्वरेण ककारं लभते । तृतीयेन ख(च)कारम् । ककारेऽक्षरत्वात् द्वितीयवर्गो(र्गे)मध्ये अल्प लक्षितत्वादाक्षरलब्धिः । रचनापूर्वकवर्गे अक्षरत्वात् च छ पि ज । तथा अकारः प्रथमस्वर(रे) युक्तः ककारं लभते, तृतीययुक्तः चकारं । रचना — च छ पि ज(ड) । एवं चवर्गमध्येऽपि शेषवर्गेऽपि च शेषवर्गाक्षराणां लब्धि[ः।]रचनाभावे दर्शये(दर्शये —) चवर्गस्य च इ युक्तस्य च णा पि ज । अक्षराः — ज णा मि ज । अक्षराः — ज णा पि ज । अक्षराः — ह ट ठि ड(ए) । एवं टवर्ग-रचना । ह ढ डि ड । अक्षराः — ठ ढ डि ए । अक्षराः — ड ढ डि ढ [प ११८ ग १] अक्षराः — म ढ णि ड । अक्षराः ड ण डि ण । तवर्गस्य रचना — द ठ थि द । अक्षराः — थ प थि प । अक्षराः — द त थि द । अक्षराः — ध त थि द । अक्षराः — न ध थि ब । पवर्गस्य — प प पि प । फ प फि ब । ब प बि ब । भ प भि ब । म ब भि ब । यवर्गस्य रचना — य य यि ब । अक्षराः — र य रि स । ल श लि ब । अक्षराः — व क शि ल । शवर्गस्य प्रकार — श ह शि ब । ष क षि ग । अक्षराः — स स सि ध । अक्षराः — ह(ह) क हि ब(हि ह) । एवं विस्ताराक्षरलब्धि रचनाद्र(द्र)ष्टव्या ॥ ११५ ॥

सत्तम-णवमेहि समं, लहइ ककारो चवग्ग एक्केक्कं ।
तइय-चरिमा वि एव, सटवग्गे पतवग्गे य ॥ ११६ ॥

प्रभाक्षरे ककारः सप्तमेन एकारेण युक्तः नवमेन ओ(ओ)कारेण युक्तः चवर्गै[प ११८ ब १]-कैकमक्षरं लभते । तथा तृतीयो गकारः, चरिमो ङकारः सप्तम-नवम-स्वरयुक्तः चवर्गैकाक्षरम् । एवमुक्त इति । तथा धकारः सप्तमेन नवमेन वा स्वरेण युक्तः टवर्गैकमक्षरं स्वराद्युपलक्षितत्वादुत्तरम् । तथा बकारः सप्तमेन नवमेन वा स्वरे[ण] युक्तः तवर्गैकमक्षरं लभते स्वराद्युपलक्षितत्वादुत्तरमिति ॥ ११६ ॥

सेसाण वि एस कमो, चादीणं अट्ठमा[प० १९७, पा० १]वसाणाणं ।
अहरुवि(व)रि एक्केक्कं, परिहा[य]इ वट्ट(ड्ढ)इ अहरो ॥ ३२७ ॥

प्रस्तारेणास्यार्थो दर्शयितव्यः । शेषाणामप्येष क्रम इति । प्रश्नाक्षराणामादिस्थितस्य ककारस्य चकारस्य वा चकारेण वा ककारस्य युक्तस्य यथावस्यवर्गाक्षरलाभ उक्तः । चादयोऽपि हकारान्ताः सप्त सप्त प्रस्त(स्ता)रेणयुक्ता उकारयुक्ता[ः] पूर्ववत्सवर्गादेकमक्षरं लभन्ते । उत्तराक्षरोऽधरस्वरयुक्तः परिहीयन्ते(ति) [प० १९७, पा० २] अल्पसंख्यो भवतीत्यर्थः । अधराक्षरोऽधरस्वरयुक्तो वर्द्धते बहुसंख्यो भवतीत्यर्थः । एतच्च विस्तरेण वर्णितमिति नोक्तम् ॥ ३२७ ॥

आकारीकारेहिं, लभइ समेओं ककारो [य] चवग्गे ।
तइय-चरिमादि एवं, लभइ खकारो य-ट-तवग्गे ॥ ३२८ ॥

ककारः आकारेण युक्तः चवर्गादेकमक्षरमधरानुवलितत्वाद[प० १९८, पा० १]धरं प्राप्नोति । ककार ईकारेण युक्त[ः] टवर्गे अधराक्षर अधरानुवलितत्वात् । एव तृतीयगकारः, पंचमङ(क?)कारः क्रमेणाकारयुक्तः चवर्गाक्षरं, ईकारेण युक्तः टवर्गाक्षर अधरं अधरानुवलितत्वात् । खकार आकारेण [युक्तः] टवर्गे अधराक्षरं प्राप्नोति । प(ख)कार इ(ई)कारेण युक्त[ः] तवर्गादेकमक्षर [प० १९८, पा० २] लभते अधरानुवलितत्वाधरम् । एवं द्वितीयवर्गाक्षराः शेषाः आकारेण क्रमेणाकारयुक्तास्तृतीयवर्गाक्षराणि लभन्ते । इ(ई)कारयुक्ताश्चतुर्थवर्गाक्षर प्राप्नोति (प्नुवन्ति) अधरानुवलितत्वादधरम् । अन्यगाथया अमुमेवार्थं प्रस्तार्यते[1]—ककार आकारयुक्तः ईकारयुक्तश्च क्रमसः(शः) चवर्ग-टवर्गौ लभते । यथा—का च की ट । अस्याधः [प० १९९, पा० १] खकार-थकाररचना—खा ट खी थ । अस्याधः—गा च गी ठ । अस्याधः पकारः आ(आई?)कारयुक्तश्च । त-पवर्गौ प्राप्नुवन्तः (प्राप्नोति) ॥ ३२८ ॥

तदर्थगाथामाह—

त-पवग्गेसु घकारो, दोसु वि एक्केक्कयं लभे कमसो ।
सेसाण वि एस कमो, चादीणं सव्ववग्गाणं ॥ ३२९ ॥

घकार आकारयुक्तः तवर्गादधराक्षरमवाप्नोति । घकार इ(ई)कारेण युक्तः पवर्गादेकमवाप्नोति । क(?)कारादयश्चतुर्थवर्गाक्षराः शेषाः पद्द आकारेण युक्ताश्चतुर्थवर्गाक्षरं प्राप्नुवंति । इ(ई)कारयुक्ताः पंचमवर्गाक्षरानधराक्षरा[न्] लभन्ते अधरानुवलितत्वात् । यतौक्त(थोक्त)क्र[प० १९९, पा० २]मेण । एवं च चकारादयो हकारान्ताक्षरा आकारेण ईकारेण वा युक्ता यथा प्राप्नुवन्ति वर्गाक्षर(रा)स्तयाभिहत (हि ताः ।) प्रस्तारोऽत्र लिख्यते—अनन्तरस्याधस्तात्—पा थ पी भ । एवं डाकारः चकारं । डी टकारम् । स्थापनादनन्तरस्याधस्तात्—ड च डी ढा । एवमेतौ द्वितीयचतुर्थमात्रौ शेषवर्गानुस्वारे(सार)तोऽपि वक्तव्यावा(व्यौ या)वत् स्ववर्ग [प० २००, पा० १]इति पूर्वस्या गाथया चवर्ग आद्याक्रान्तक्रमेणेति ॥ ३२९ ॥

क-च-टादीनां पढमा, चरिमो(मा) य समं लहसु (°हं तु) कारेण ।
लभइ तवग्गे एवं, साणुस्सारे य सविसग्गे ॥ ३३० ॥

ककार(?) क च ट वर्ग-त्रयस्य ग्रहणम् । आदिशब्दाच्छेषवर्गाणामपि कवर्ग-चवर्ग-टवर्गस्य च प्रथमाः । ककार-चकार-टकारोचे(राश्चै)वम् । एते प्रश्नादौ चकारेण सह दृश्यमानाः

1 'असावेवार्थः प्रस्तार्यते' अथवा 'अमुमेवार्थं प्रस्तारयति' इति भाव्यम् ।

[प १ ब २]कि छर्मेत इमत आह्—पचस ककारा ककारयुक्ता पकारं लभंते । चकार चकारेण युक्तः चकारम् । टकारः साकारम् । मात्रासंख्यानियमेन शेषवर्गेष्वपि चरमः । एवमेव क्रमेण—ड म न एते तकारयुक्ता पत एव लभते(न्ते) । यथा कुमार पकार(र्) कुमार चकारं कुमार सकारं [प १ १ ब १]रचना—कुप कुच कुस(स) । अस्यापश्चात्—कुप कुट कुप । अस्यापश्चात्—कु च । कुक । कुस । ततः पंचमः—कुप । कुप । कुस । अस्यापः चतुर्थः—कुम । कुच । कुह । एवं कवि(र्)क्रमरचनास तथा रचना ककारस्यापि टकारस च । 'च प टा दीर्घा पढमा चरिमा य सर्व चकारेण'ति गाथार्थः [प १ १ ब १] व्याख्यावः ॥ 'तथा जाणे' इमेयत्सरं व्याख्यायते—'च प ध म(स) चतुर्णामेषां वर्णानां कविर्वर्णमस्मिन्नाधेन यथा चकार पकार-नकार-सकाराणां चकारसहितानां क्रमेणैव कविः । केषां ? अकार-ककार चकार-अकाराणां आप्स्नात् । अकुक । कुक । कुठ । अस्या कुआ । कुठ ठ डु । ठ । अस्यापः—कुइ । कुगछ । अकुम । अस्यापश्चात्—कुच । कुआ । कुप् । कुण । अस्यापः—कुई । कुच । कुक । कुह । एवं यथा च प च ठ वर्गाक्षराणां कविक(र्) चकारेण सह तथा शेषस्यापि । यथा—चकारेण सह कवि[ः]वक्तव्या इति । व्याख्यानमेतत्सर्वं [प १ २,ब १] 'कमवि वर्णे मम'सिद्धि । 'सानुस्वारे य सविसग्गे' इमस्य गाथायामर्थस्य व्याख्या कु(कि)यते—कवर्ग-चवर्ग-टवर्गाक्षराः ककार-चकार-टकाराः सानुस्वाराः—कं चं टं एते पूर्ववत् यथा ककारसहित लभन्ते । तद् बिंदुविसर्गाभ्यां भवति । बिन्दोर्युक्तस्योदाहरणम्—ककार[ः] बिन्दुसहितः चकारं लभते, 'चं' इत्येवा(च) च(स)कारम्, 'टं' इत्येव सकारम् । स्थापना—कंच । चंच । टंस । अस्यापः—दंक । छंर । ठंप । अस्यापः—मच(गंच) । जंस । डंस । अस्यापः—घंच । झंच । ढंह । अस्यापः—डाम कुडच(डंम । भंम ।) णंस । चतुरं तमावारयति । अथर तु(तु) अपरमेव । सविसर्गोपि(प्ये)वं यथा—काःच । चाःच । टाःस । [प १ ३,ब १] अस्यापः—दाःक । छाःर । च(ठ)ःप । अस्यापः—गाःच । जाःक । डाःस । अस्यापः—घाःम । झाःच । ढाःक । अस्यापः—घाः मं । ञाःच । णाःह । यथा एतौ सानुस्वारस्य (स)विसर्गस्यैव कविरस्य यथा 'तथवस' इत्येतेषामपि प्रस्तारः—क(कं)क । चंक । चंच । टं(टं)ड । अस्यापः—तंका । चं(थं)म । । दंछ । [धंछ] धंह । पं(फं)ग । बं(भं)च । मंड । अस्यापः—तंका । मेघा(णः) । मंचः । मं(म)चा । [प १ ३ ब १] अस्यापः—यंई । मंप । वस । ईव । सविसर्गो(र्गो)प्येवं यथा—ताःक । थाःक । दाःच । धाःठ । अस्यापः—पाःका । फाःप । राःछ । वाःठ । अस्यापः—दाःइ । पाःक । [फाःग] । घाःज । डाःव । अस्यापः—भाःच । माःड । वाःप । साःण । अस्यापः—धाःई । माःप । षाःह । हाःच । सानुस्वार-विसर्गादेतौ । अथवाऽन्यथा रचनाक्रमेण गुरुवाक्(द) ॥ ११० ॥

1 इत्यादौ सर्वत्रैव...[illegible]...अत्रैव अक्षरानि । —सम्पादकः ।

सानुस्वाराणां ककाराणां स्थापना—

१	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
२	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
३	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
४	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
५	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

सविसर्गाणां ककाराणां स्थापना

१	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
२	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
३	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
५	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

सानुस्वाराणां तकाराणां स्थापना—

१	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
२	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
३	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
४	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
५	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

सविसर्गाणां तकाराणां स्थापना—

१	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
२	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
३	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
५	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

कचया(टा)दीणं पढमो, चरिमो य समं लभंतुकारेण ।
लभइ[प० २०३, पा० २] तवग्गे एक्कं, साणुस्सारे य सविसग्गे ॥ ३३१ ॥

'कचटादि' इत्यनेन कचटतपयशानां प्रथमो वर्गः । तृतीयस्वराः(वर्ग') गजडदबलसानां । पञ्चमः ङञणनमाः । एतमेवादिमग्रहणं समर्थितं भवति । एते कचटा त्रयः उकारसहिता यथा—कु चु टु तु पु यु शु । मनो(एते?)धस्तात् पञ्चमवर्गोत्तरान् लभन्ते यथा—तपयस(श) । अकचट । तृतीया[प० २०४, पा० १]स्तु गजडा त्रयः उकारसहिता यथा—जु गु(गु जु) डु दु(वु) लु सु । एतेऽपि त्य(स्य)स्मात् क्रमेण पञ्चमो पञ्चमो लभते(?) दबलसगजडन्या(डान्यः) । अंत्या उकारयुक्ता यथा—ङु ञु णु नु मु । ग(य)वर्ग-शवर्गयोः पञ्चमः कथाशब्दः, हिक्काशब्दश्च । प्रश्नकाले तायपि श्रुत्वा पंचमस्य य-सवर्गप्राप्तिर्भवति । यथा—गयचसदु । कथ-शब्दः, हिक्काश[प० २०४, पा० २]ब्दश्च । एते सम । "कचटादीण पढमो तवगो चरिमो सम उकारेण लभइ तवग्ग" इत्येतद् व्याख्यातम् ॥ ३३१ ॥

ख-छ-ठादिएहि सहिया, एते उ हवंति छट्ठए वग्गे ।
घ-झ-ढाइएहिं सहिया, सत्तमवग्गे लभे एक्कं ॥ ३३२ ॥

खकार उकारयुक्तः षष्ठे षवर्गेऽक्षरमुत्तरं प्राप्नोत्युत्तरानुवलितत्वात् । छकार उकारयुक्तः शवर्गे उत्तरानुवलितत्वादुत्तरम् । ठकार उकारयुक्तः अवर्गे उत्तरानुवलितत्वात् उत्तरस्वरम् । एवं थफरसा(षा)[अ]पि । खकारः अनुस्वारयुक्तः षष्ठे षवर्गे उत्त[प० २०५, पा० १]राक्षरं लभते । स एव सविसर्गो युक्तोऽधरम् । छकारः सानुस्वारः सवर्गे उत्तरमवाप्नोति । धकारः सानुस्वारः अपवर्गे उत्तरं लभते । विसर्गयुक्तोऽधरम् । एव छकारोऽपि [स]विसर्गयुक्तो यवर्गेऽधरमिति । एवं थफरषा वक्तव्याः । एव गाथाप्रागर्दशात्त(?प्रागर्द्धशब्दार्थः ।) 'घझढाइएहिं सहिया' उकारबिन्दुविसर्गाः । थ(घ)कार ओ(उ)कारयुक्तः सवर्गे उत्तरं लभते । बिन्दुयुक्तः सवर्ग एवोत्तरं लभते । स एव घकार. विसर्गयुक्तः तत्रैवाधरमिति । एव ऊ(झ)कार उकारयुक्त सप्तमे सवर्गे उत्तरानुवलितत्वाद्उत्तरं, स एव बिन्दुयुक्तः [प० २०५, पा० २] तस्मिन्नेवोत्तरं लभते । विसर्गयुक्तः अधरम् । एव ढकारोऽपि । एव च सर्वदा(?भ व घा) अपि स्वस्थानात्सप्तम वर्गाक्षरं लभन्ते ॥३३२॥

उत्तरवंजणसहि[या], सत्तमवग्गे लभंति सेससरा ।
अहरेहि अ संयु(जु)त्ता, लभंति अहराहरे वग्गे ॥ ३३३ ॥

उत्तराः [प० २०६, पा० १] प्रथम-तृतीय-पञ्चमवर्गाक्षराः परिशिष्टैः स्वरैः 'ऊ ऐ औ' इत्येतैस्त(स्त्रि)भिर्युक्ताः आत्मीयादात्मीया[त्] सप्तम ईकारयुक्तो लभ्यते । प्रश्नाक्षराणामादिस्थितस्य यदाऽमतः इकार इकारयुक्तो दृश्यते तदा टकार इकारा[प० २०६, पा० २]रयुक्तो लभ्यते । प्रश्नाक्षराणामादिस्थितस्य यदामतः टकार औकारयुक्तो दृश्यते तदा दकारो लभ्यते । अधरवर्गा [अ]-धराधरमक्षरं लभन्ते अधरस्वरयुक्ताः । इत्येष पश्चार्द्धो(र्द्ध)गाथार्थः ॥

अथवाऽस्य(स्या) गाथ(था)या व्याख्या—उत्तरव्यजनशेषस्वराः 'ऊ ऐ औ' त्रयोऽप्येते उत्तरव्यञ्जनसहिता यथा—कू चू टू तू पू यू शू । ऊकार अधस्तात् उत्तरव्यञ्जनसहितो लभते क्रमसः(शः) सर्वस(?)वर्गं यथा—श अ क च ट त प । तथा उत्तरव्यञ्जना येषु वर्गेषु अधरानलि-

वत्वादक्षरायत्य । तथा स्वरान्वयात्–गृह्यत्र[प १ ७ पा १]मृमृसृ वर्गे कवि । क्रमेणैव च इ ग ज ड द बाः, एषु वर्गेषु अक्षरानुपक्तिवत्वादक्षरं लभ्यते । तथा द्धृधृनृमृ अमस(स्रा) सप्तमवर्गो यथा क्रमेण चि(चे)अक्षरानुपक्तिवत्वादक्षरा(रे)मिति । ई(ऐ)कार स्वर व्यञ्जनसहितः यथा–कै चै टै तै पै यै शै । अस्मिन्नु क्रमात(शा) एषु वर्गेषु त(त्रि)का भवति । [†]वत्वादक्षरायरं । श्रु । ख छ ठ थ फ र ष । एवं ग ज ड द ब ल स एयोऽपि पेक्षरयुक्त यलभ्यता । ककचा एयमेति । तथा अ(औ)कारयुक्त स्वरान्वयात् । कौ चौ टौ तौ पौ यौ शौ(सौ) । अस्मिन्नु सप्तमवर्गात् अक्षरानुपक्तिवत्वादक्षरात् । घ झ ढ ध भ व हाः । एवं ग ज ड द ब एयो क च टा एयोऽपीति । एवं अकार-ऐकार-औकारयुक्तः अक्षरा अक्षरा[ऽ] लभ्यते । खृछृठृथृ फृरृषृ । अस्मिस्त्वप्यते अक्षरानुपक्तिवत्वादक्षरामेव [प १ प १]च ख छ ठ थ फ र । यथा, घृझृढृधृभृवृहृ । अस्मिन्नपो वर्गेषु अक्षरानुपक्तित्वात्क्षराक्षरकल्पिताः । ग ज ड द ब ल स यथा अकारयुक्तत्वा ऐकारोऽक्षरायपि चाप्यामिति एवं अक्षरायरेषु लभ्यते । इत्युक्ते व्याख्यानं इति ॥ ११३ ॥

लभइ क्कारो जुत्तो, चकारवग्गमि तइय-चरिमेण ।
ट[त]वग्गे अइ पण्हे, दसमसरो [प १ ८ प १]तइओ यादीए ॥ ११४ ॥

ककारः प्रथमाक्षरमामात्रिकिवि(ख) ईकारेण सयुक्तारेण युक्तः चवर्गेक्षरं लभ्यते । स्वरयुक्तानुपक्तित्वाल्लभ्यते । प्रथमाक्षरमामौकारमात्रिकस्य वदासव आकारयुक्तो डकारो दृश्यते तदा आकारयुक्तककार एव लभ्यते । ककारमात्रिकस्य प्रथमाक्षर(रे) यदामतः [प १ ८ प १] डकारः इकारयुक्तो दृश्यते तदा ककार एव ईकारयुक्तो लभ्यते । प्रथमाक्षरमामौकारस्य यदाऽथवा डकारः अकारयुक्तो दृश्यते तदा खकारो लभ्यते । औकारमात्रिकस्य यदाऽथवा ककार ईकार युक्तो दृश्यते तदा छीकारो लभ्यते । प्रथमाक्षरमामात्रिकस्य इकारस्य यदा(दाऽ)थवा ककार आकारयुक्तो दृश्यते तदा ककार आत्मानं लभ्यते । प्रथमाक्षरमामात्रिकस्य इकारस्य यदाऽथवा ककार इकारयुक्तो दृश्यते तदा ककारो लभ्यते । औकारस्यामतः चकारो यदा दृश्यते तदा [प १ ९ प १] चाकारो लभ्यते । औकारस्यामतः ईकारो दद ईकार एव लभ्यते । इकारस्यामतः चकार आत्मानं लभ्यते ॥ ११४ ॥

बितिय-चउत्थेहि समं, सरेहि सो चेव लभइ त-प्पवग्गो ।
सत्तम-णवमेहि समं, सेसेहि समं आहरवग्गो ॥ ११५ ॥

पूर्वोक्ते अका(क्षा) गाथ(था)या अक्षराक्षरमालाया वर्णिता । प्रथमाक्षरमामात्रिकस्य चकारस्यामतः चोकारं लभ्यते । औकारस्य प्रथमात्रिकस्य चकार एकारयुक्तः पेकारं लभ्यते । औकारस्य प्रथमात्रिकस्यामतः चकार औकारयुक्तः पो(पौ)कारं लभ्यते । इकारस्य प्रथमात्रिकस्या- [प १ ९ प १]मतः इकारः(तकारः) तकारं लभ्यते । इकारस्य प्रथमात्रिकस्यामतः थो(टो)कारः थोकारं लभ्यते । ईकारस्य प्रथमात्रिकस्यामतः शिवा[तकारः] तेकारं लभ्यते । इकारस्य प्रथमात्रिक- स्यामतः तकारः तोकारं लभ्यते । ईकारस्य प्रथमात्रिकस्य शिवस्य [तकारः] तेकारं लभ्यते । इकारस्य प्रथमात्रिकस्य ॥ ११५ ॥

---

† अक्षराणां विचारः पाठः पतितः प्रतिभाति ।

बितिएण य संजुत्तो, चकारवग्गो लभइ [प० २१०, पा० १] तइयवग्गे ।
प-यवग्गे पुण लभइ, चत्तारिस(म)एण संजुत्तो ॥ ३३६ ॥

चकार एकसंख्याक[कः], ककारोऽप्येकसंख्य एव । ततः संयोगा[द]र्द्धोत्क्रान्तिकसंज्ञः । कस्मात्? तुल्यसंख्यत्वात् । यथा 'च्क' । स यत्रतत्रस्थः प्रश्ने च्व(स्व)वर्गान् प्राप्नुतः(प्राप्नोति) । टकारः ककारयुक्तोऽर्द्धक्रान्तिकसंज्ञः यथा 'ट्क' । स यत्रतत्रस्थः प्रश्ने पवर्गं प्राप्नोति । चतुर्थतकारेण युक्तः [प० २१०, पा० २] ककारोऽर्द्धक्रान्तमापन्नो यथोक्तः स यत्रतत्रस्थे(स्थः) प्रश्ने तृतीयवर्गं प्राप्नोतीति ॥ ३३६ ॥

जो अ ककारे गमओ, भणिओ सो चेव तइय-चरिमाणं ।
आइम-तइयामिहए, लभइ तकारो हु त-पवग्गे ॥ ३३७ ॥

यथा ककारः प्रथमस्वरेण तृतीयस्वरेण वा युक्तः सवर्गोक्षरं लभते । एवं तृतीयवर्गोक्षराणां ग ज ड द ब ल सा नां, चरि[प० २११, पा० १]माणां ङ ञ ण न मा ना चान्यतमाक्षरप्रश्ने प्रथमस्वरेण तृतीयस्वरेण वा युक्तः आत्मीयवर्गेऽक्षरमवाप्नोति उत्तरानुवलितत्वादुत्तरम् । खकारः प्रथमस्वरेण युक्तः तवर्गेऽक्षरमेकं प्राप्नोति उत्तरानुवलितत्वादुत्तरम् । स एव खकारः तृतीयस्वरेण युक्तः पवर्गेऽक्षरमेकमवाप्नोति उत्तरानुवलितत्वाउ(दु)त्तरम् ॥ ३३७ ॥

लभए वीव(इ)यजुत्तो, चकारवग्गो य तइया[प० २११, पा० २]वग्गं च ।
चत्तारिमएण समं, लभइ यकारो पवग्गं उ ॥ ३३८ ॥

चकारो द्वितीयस्वरयुक्तः टवर्गं प्राप्नोति । यकारश्चतुर्थस्वरेण य(प)वर्गं लभते ॥ ३३८ ॥

जह भेओ उ चवग्गे, तह य कवग्गंमि चेव णायव्वो ।
एवं चिय दा(ता)दीहिं, सरेहिं भेओ मुणेयव्वो ॥ ३३९ ॥

यथा चकारो द्वितीयस्वरयुक्तः तृतीयं वर्गं प्राप्नोति एव्यं(वं) ककारोऽपि द्वितीयस्वरयुक्तो द्वितीयं वर्गं प्राप्नोति । तकार-चकारावप्येवमेव ॥ ३३९ ॥

एमेव सेसयाणं, चादीणं अट्ठमावसाणाणं ।
सरवग्गाण य जोगो, अद्धक्कंतक्कमो होइ [प० २१२, पा० १] ॥ ३४० ॥

एवं यथा प्रथमवर्गः शेषाक्षराणां शकाराष्टसप्त(ष्टमा०)ताना तृतीयवर्गोक्षराणां ग ज ड द ब ल सा नां चतुःसंख्यानामक्षराणा यः संयोगः सार्व(?आर्द्ध)क्रान्तिकसंज्ञः । तस्य संयोगस्य अधस्तात् योऽक्षरः स तृतीयवर्गं प्राप्नोति । तुल्यसंख्यस्य स्वरस्याक्षरस्य च यः संयोगः सोऽप्यर्द्धक्रान्तिकसंज्ञः । अः तृतीयवर्गं प्राप्नोति ॥ ३४० ॥

पण्हाइमसंखाए, सव्वे पण्हक्खरे गुणेऊणं ।
उवरिल्ले पक्खेउं, आइल्ले अट्ठहिं विभाए ॥ ३४१ ॥
सेसं वग्गे णामक्खरं होइ ।*
जइ पुच्छइ कं म(स)रं तो, करेज्ज अह[प० २१२, पा० २]त्तरं कमसो ॥ ३४२ ॥

* मूलादर्शे अस्या [illegible] एव पूर्वार्द्धं उपलभ्यते । खण्डितमाय इत्याभाति ।

प्रमाणाक्षरमध्ये द्व(प)रिमाणानां संख्या अपरिमाणाक्षराणां च संयुक्ताक्षराणां या सर्वाक्षरसंख्या तामेवैतस्य पृथग्(क्) स्थापयेत् । परिस(शि)ष्टानां प्रमाणाक्षराणां विषमप्रमाणाक्षराणां च या संख्या तामेवैतस्य स्थापयेत । अ क च ट त प य श वर्णानां वसु-मुनि-रस-श(श)र-सागर-गि-यम-चन्द्राः क्रमसो(शो) गुणकार[ः] । प्रमाणाक्षराणां मात्राक्षर प्रविभक्तो गुणाकारः, तेन गुणयित्वा स्थापितं अपरोऽक्षरसंख्यामुपरि[प १११ ब १]ष्टादधरं पृथक् स्थापितं तत्रैव प्रक्षिप्य-मिमांगेऽपहृते अवशिष्टेपाय द्वौ वर्गौ अन्य(न्ये)षे । अवमवर्गो पदाभिय(क)वराणामि पुनर्भागे हृते अवशिष्टेपाम(प)द्वौ वर्गौ पुनरन्य(न्ये)षे । अकारादयो अष्टवर्गाः शेषाश्च ज्ञेयाः ॥ १४१–१४२ ॥

एमेव सेसवग्गे, णामक्खरणा(या)ण हवइ एक तु ।
जइ इच्छसि त करण, करणे(रे)ण अपरापर तत्तो ॥ १४३ ॥

एवं शेषवर्गाण(णा)मक्षराणि प्रत्येकं नामाक्षरं लभ्यते । प्रमाणाक्षराणां विपरीतानां मध्ये पूर्वोक्तप्रकारक्रमेणाक्षरमुत्तरमपरं ज्ञायाद् ॥ १४३ ॥

॥ वर्णाक्षरसंयो[प ११८ ब १]गोत्पादन समाप्तम् ॥

अत्यु(णु)सार-विसग्गाविही, ण(णा)मत्तो होइ सव्वओमणे(रे) ।
चउसु वि दिसासु एवं, वग्गो ण(णा)मक्खरुप्पत्ती ॥ १४४ ॥

सर्वतोभद्र[ः] मकारसंजरेण न लभ्यते वर्षेविद्गुम् । अनुस्वारविसर्गग्रहणेन शेषव्यञ्जनानि सूचना कृत्य । अतो मामनलरतोमाय(द्र)मुर्ध्नि विद्व(स्व)रपात्रमिकत्वा पृथक्पृथक्नामाक्षर-वीविवमरणापि नामाक्षरोत्तपरिपीति मकारेण वर्षे(र्षे)व इति सर्वतोभद्रस्य महाकरम(प)म सूक्ष्मविवरपारक्षा(म्पा)मरणपरवक्षपर्वैष्य(र्ष) न्यासमात्रं [प ११४ ब १] पंक्ति पंक्ति(:) लिख्यते । तत्र सूक्ष्मविवर अष्टमंडलमध्ये अकार तस्य पूर्वतः एकारः । दक्षिणतः ऐकारः । अपरतः ओकारः । उत्तरतः औकारः । द्वितीयवर्गे पूर्वदिशायां क ख च छ ट ठ । तृतीयवलये दक्षिणायां वा घ ङ ड ण त द न । चतुर्थे अपरायां इ ग ज ड द ब ल स । पंचमे उत्तरायां च श ह ढ ध म व ह् । भूयः पञ्चवलये पूर्वोदि आदित्य-सोम-भूम-बुध-गुरु-शनि-चन्द्र-राहु-नर्दन्ता महा । सूर्या(र्ये)सोमांयु(प)रि पुनर्वसु-पुष्या-श्लेषा । सोमगुणमन्तरे मघा पूर्वफल्गुनीहस्त च । भूमे हस्तः । बुधगु[प ११४ ब २]र्वान्तरे चित्रा स्वाति विशाखा । गु[रु]शुक(क्र)मन्तरे अनुराधा ज्येष्ठामूलानि । गुरुशनैश्चरांतरे आषाढाऽभिजिच्छ्रवण । शनैश्चरोपरि पूर्वाषाढा । शनैश्चरांतरे धनिष्ठा शतभिषा पूर्वभाद्रपदा । चन्द्रोपरि उत्तरभाद्रपदा । चन्द्रराहु म(अ)न्तरे रेवती अश्विनी भरणी चेति । राहुसूर्यान्तरे कृत्तिका [प ११५ ब १] रोहिणी मृगशिरश्चेति । सूर्योपरि आर्द्रा । एवम् पञ्चवलये पूर्वदिगादितः ॥

मेष क ख ग घ ङ । वृषः च छ ज झ ञ । मिथुन वृषोपरि ग(गो)चरः । अकारोपरि मिथुनः । दक्षिणतो कर्कटः । ततः ट ठ ड ढ ण टकारस्योपरि सिंहः । त थ द ध न दकारस्योपरि कन्या(न्या) । अपरदिशा(शा)यां तुला(ला) । प फ ब भ म [प ११५ ब १]मकार

† पूर्वेदाय लिखाद् तथा इति प्रतिभाति ।

सोपरि वृश्चिक। यरलव पंचमोऽयं कुंथशब्दो लकारोपरि धनुः। उत्तरतो मकरः। शपसह पचमोऽयं हिंकृतः शब्दः शकारोपरि कुम्भः। कखगघङ गकारोपरि मीनः। एवं सप्तमावरणम्। अष्टममिदानीं—पूर्वादितः कचछजझञ। ञटठडढण। चतथदधन। पफ वभम। दयरलव। शपसह। तकखगघङ। चछजझञ। एवा(वम)ष्टमम्। नवमं इदानीं—पूर्वादितः चटठडढण। यतथदधन। पफवभम। शयरलव। तशषस ह। कंकखगघङ। पचछजझञ। चटठडढण। दशममिदानीम्—टतथदधन। शप फवभम। तयरलव। कशपसह ञ। पकखगघङ। च चछ[प० २१६, पा० १]जझ ञ। यटठडढण। कतथदधन। एकादश(म)मिदानीं—तपफवभम। फयरलव। पशपसह। घशकखगघङ। जचछजझञ। ञपटठडढण। तथदधन। फपफवभम। द्वादश[म]मिदानीम्—पयरलव। शपसहञ। यकखगघङ। टचछ जझञ। शटठडढण। तथदधन। कपफवभम। पयरलव। त्रयोदश[म]मिदानीम्— यशपसह। टकखगघङ। शचछजझञ। तटठडढण। कतथदधन। पफवभम। वयरलव। यशपसहञ। चतुर्दश[म]मिदानीम्—श अ, क आ, ख इ, ग ई, घ ङ(उ?), ञ उ (ऊ?), त ए, च ए(ऐ), छ उ(ओ), ज ऊ(औ), झ अं, ञ अः। क अ, ट आ, ठ इ, द(ड) ई, ढ उ, णे ज(ऊ), प ए, व ऐ, प ओ, द औ, ध अं, न अः। च[अ], प आ, फ इ, व ई, [प० २१६; पा० २] भ उ, म ऊ, य ए, र ऐ, व उ(ओ), ल ऊ(औ), व अ, ढ अः। द अ, [श] आ, [श] इ, स ई, ह उ, ख ज(ऊ), ग ए, क ऐ, ख उ(ओ), ग अ(औ), घ अं, गः(ङ) अः। पंचदश[मं]पूर्वादितः अकचटतपयश। ए। ऐखछठथफरप। आ। इगजडदघलस। ओ। औघझढ धभवह। ई। अकचटतपयश। ए। आखछठथफरप। ऐ। इगजडदवलस। ईघझढधभवह। औ। एवं पचदशावर्ण(रण)पर्यन्तोऽयम् ॥ ३४४ ॥ [प० २१७, पा० १]

॥ सर्वतोभद्रः समाप्तः ॥

सर्वतोभद्र इति महरि(ऋ)क्षराद्यक्षरविधानेन येन केनचिद् यथादिस(श)मायातस्यादेस्यो(श्या)क्षराण(णि) च ग्राह्यानि। अन्यत्र विधान इति। मंगलार्थं च इह लिखितमिति ॥ छ॥

कंठंतरिओ वि उरो, उ(प?)रभारं(वं?) सो न गच्छए मोत्तुं।
अवसेसंति(समंत?)रिओ पुण, आइल्लमणंतरं पावे ॥ ३४५ ॥

'अइएउ' एते कण्ठ्याः। एतेषामन्यतमो[प० २१७, पा० २] हकारस्ये(स्य) प्रश्नाक्षरादिस्थस्य यदाऽमतः तदा हकार एव लभ्यते। 'अइएउ' एतेषा कण्ठ्याना अन्यतमादिस्थस्य 'आईउऊ ऐऔअअः' एतेषां अपरिशिष्टस्वराणा अन्यतमो यदाऽमतः स्थितमेवाद्यमन्यतरं तदा कण्ठ्या(ठ्य) स्वरं लभते ॥ ३४५ ॥

उक्कारादिसु एवं, पढमंतरिओ ण एइ परभावं।
अभिहमं(म्मं)तो पुरओ, आदित्त(ल्ल?)मणंतरं लभइ ॥ ३४६ ॥

उकारस्य हकारस्य प्रथमस्य प्रश्नाक्षरादिस्थस्य यथाऽमतोऽनतर ककारः प्रथमो दृश्यते तदा हकार एव लभ्यते। हकार(रे) ककारेणालिंगिते आदिस्थो [प० २१८, पा० १] हकार एव लभ्यते। उकारस्य कण्ठ्यसयोगकरणम् ॥ ३४६ ॥

† .. .. सीस भायए सदा काल ।

जं सेसं सा हु तिही, योच्छ णक्खत्तकरण से ॥

लद्धाओ जा तिथीओ, या(हीणा) रूपेण कण्ण(ण्ह)पक्खस(स्स) ।

सुक्क पि दोहि भाए, माससनामादिरिक्खगण ॥

सर्वदा प्रश्नकालिनी छाया राम(श)यो [illegible] होरेति पंचदशानां संज्ञा प्रश्नाक्षरम् । [illegible] [illegible] रूपस्य(विश)त्पक्षगुणाक्षेपः । वर्तमानतिथियुक्तं च कृत्वा शेषं गतार्थः ॥[illegible](र्या)[illegible]

पढमो विसमो उ सरो, बितिओ य समो तइओ सम्मो ।

विसमसमो य चउत्थो, सेसा एवं सरचउक्का ॥ १४७ ॥

प्रश्नाक्षराणामादिभो गकारो विष[म] इति इकारयुक्त गकारमेव लभते । प्रश्नाक्षरादितो [illegible] चकार च ईकारयुक्ते चकार एव लभते । एकारो विषम [illegible]कारयुक्ते एकार एव लभते ॥ १४७ ॥

एवं समवग्गाण, चउछ्या विसमवग्गयाणं च ।

णायका णंतरओ, विसमा [प २११ प १] विसमाण सजोए ॥ १४८ ॥

समस्वरे[ण] युक्तसमाक्षरमेव लभते । विष(ष)मस्वरेण युक्ते विषमाक्षरे [illegible] । एवं सर्वे ककारादयो हकारान्ताः समस्वरे(रै)र्युक्ताः समाक्षरमेव लभन्ते । विषम[illegible]युक्ता विषमाक्षरा एव लभन्ते ॥ १४८ ॥

समसजोएण समो, लभइ अ विसमो य विसमसंजोए ।

वग्गे दिट्ठो एसो, भणिओ वग्गक्खरवि[प २१६,प १]भाओ ॥ १४९ ॥

समस्वरयोगे [illegible] समं लभ्यते । [illegible] च विषमस्वरसंयोगे [illegible] विषमाक्षरे लभ्यते । [illegible] विषम एव [illegible][व][illegible] । [illegible]क्षरविभागो [illegible] ॥ १४९ ॥

॥ संकट-विकट समाप्तम् ॥

वग्गक्खरा तिगु(गु)णिया, सेसो पढमक्खरस्स वग्गंमि ।

तिसु चउसु अभो अहे, तमि य णा[म]क्खर वग्गो ॥ १५० ॥

प्रश्नाक्षरा । [illegible] वर्गोक्षरा । प्रश्नाक्षराणां [illegible] वा संख्या [illegible] त्(त्रि)गुण्यं कृत्वा प्रश्नाक्षराणां ककारादीनां हकारान्तानां [illegible] पूर्व(त्रि)गुणित-पिंडात् पंच प्रक्षिप्य ये ककारादीनां हकारान्तानां [प २२ प १]प्रश्नाक्षराणा[illegible] तन्मिश्रेण संख्या पिंडस्य [illegible] शेषे चकारादिवर्गे लभ्यते । [illegible] पुनः सप्तभिर्भागे पञ्च(षड)र्भा[illegible] शेषं तयोः ककारादिवर्गो लभ्यते ॥ १५० ॥

अक्खरसरिसा जोणी, मत्तासरिसं च जाणए रूवं ।

एव सेस मिस्से, वग्गेण निरूविओ भेओ ॥ १५१ ॥

---

† [illegible] गाथाया एव पूर्वार्द्धः [illegible] । [illegible]
[illegible] दुर्गन्धिता लभ्यते । [illegible] ।

जीव-धातु-मूलाक्षरैः पूर्वोक्तैर्जीवधातुमूलयोनिनिर्देशकार्यैः(र्यं?) मात्राभिर्व्रष्टव्यम्। रूपं शुक्लं कृष्णं पीतं रक्तादि। लक्षणं दीर्घमल्प वृत्तं इति। जीव-धातु-मूलोत्तराक्षरैः पंचभिर्भेदः प्रश्नाक्षराणां निरूपयितव्यो वर्गप्रतिबन्धः ॥ ३५१ ॥ [प० २२०, पा० २]

पढम-तइए य चरिमा, वग्गा पासंडिया तहा भणिया।
सेसा य अपासंडी, णिद्दिट्ठा पण्हइत्तेहिं ॥ ३५२ ॥

प्रथम-तृतीय-पंचमवर्गाणां अन्यतमबहुले प्रश्ने पाखंडिनो ज्ञेयाः। के ते? प्रव्रजिताः शरद्न्वादयः आजीविकादयश्च। शेषाणां द्वितीय-चतुर्थ-वर्गाक्षराणा अन्यतमाधिके प्रश्ने अपाखंडिनो ज्ञेयाः। [प० २२१, पा० १] अपापंडिन इति गृहस्था भण्यन्ते ॥ ३५२ ॥

पढमो वग्गो पासंदाहिण (दाहिणपासं?) बिइ(ई)य एव चउत्थे य।
रा(वा)मं तइए मज्झं, दो पासे पंचमं जाण ॥ ३५३ ॥

प्रथमवर्गाक्षरबहुले प्रश्ने तैरेव प्रथमवर्गाक्षरैरनभिहतैर्दक्षिणपार्श्वे पुरुषस्य लांछनं ज्ञेयम्। अनभिहतैः स(श)स्त्रप्रहार इति। द्वितीय-चतुर्थवर्गाक्षराणामन्यतमबहुले [प० २२१, पा० २] प्रश्ने तैरेव द्वितीय-चतुर्थवर्गाक्षरैरनभिहते वामपार्श्वे लाछनं प्रत्येतव्यम्। अभिहतैस्तैरेव शस्त्रैः प्रहारादिकम् ॥ ३५३ ॥

पढमसरे सिरभागं, णिडालय होइ तह कवग्गंमि।
चिबुयं[च] चवग्गंमि, गिवप्पएसो टवग्गंमि ॥ ३५४ ॥

प्रथमस्वरग्रहणेन अवर्गो गृह्यते। तेन सिरो ज्ञेयः। कवर्गे निडालं। चवर्गे[प० २२२, पा० १] चिबुकं। टवर्गे ग्रीवाप्रदेशा(शः) ॥ ३५४ ॥

हिययं च तवग्गंमि, कडिय पवग्गंमि होइ नायव्वा।
ऊरू [य] यवग्गंमि, जाणु पव(ए)सो सवग्गंमि ॥ ३५५ ॥

तवर्गाक्षरबहुले प्रश्ने हृदयं ज्ञेयम्। पवर्गबहुले प्रश्ने कटी ज्ञेया। ज(य)वर्गबहुले ऊरू ज्ञेयौ। जाणु(नु)पादौ सवर्गबहुले ॥ एवं अष्टविभागागकल्पना। [प० २२२, पा० २] पंच(एवं?)-प्रदेशभागकल्पनार्थः(र्थमाह?) ॥ ३५५ ॥

सीसो य अवग्गंमि, णिडालदेसो तहा कवग्गंमि।
अच्छी य चवग्गंमि अ, णासा हु तहा टवग्गंमि ॥ ३५६ ॥

यदभिहितं अवर्गबहुले प्रश्ने शिरो ज्ञेयः, तस्येदानीमवयवा[न्] तैरेव वर्गाक्षरैराह—अवर्गाक्षरबहुले प्रश्ने मूर्द्धजाः प्रत्येतव्याः। [प० २२३, पा० १] कवर्गाक्षरबहुले प्रश्ने ललाटं ज्ञेयम्। चवर्गबहुले प्रश्ने लोचने। टवर्गे नासिका ॥ ३५६ ॥

वक्कं होइ तवग्गे, अहरोट्ठा तह पवग्गए भणिया।
चिबुयं च [य]वग्गंमि, होइ य गीवा शवग्गंमि ॥ ३५७ ॥

तकारा(वर्गा)धिके वक्त्रम्। पवर्गाधिके ओष्ठौ। यवर्गे चिबुकः। शवर्गे ग्रीवा इति ॥ ३५७ ॥

एवेसु पएसु[प १११ B १]सेसु, एतेमि अभिहएहि वग्गेहिं ।
मसयं तिलयं सस्स-मसय च कमसो वियाणाहि ॥ १५८ ॥

थिर(स्थिर)प्रश्नको ये प्रदेशा वेरयरा(रे)वच्याः तेरमि(व)भिहतैः अभिदेश प्रश्ने(मे) यं प्रदेशो निरुपद्रवो वक्तव्यः । अभिहतैरुपद्र(द्र)वयुक्तः । यथा(तिलका)भिघातस(कि)मिषा । तत्र दीर्घगोवरैराश्रितैः मस(श)कं तिलकं च वक्तव्यम् । अभिभूमितैमाकर्ष(वैरंच) इत्येषु स(श)ब्द-प्रहाराः तत्र प्रदेशे वक्तव्याः ॥ १५८ ॥

भणिएहि वयणदेसे, वग्गेहि य अभिहएहि जाणिज्जा ।
मसय-तिलयाइ सव्व, चिण्हं गुरुप(अप्प)एसेसु ॥ १५९ ॥

वसमे वाम्मि[प ११४ B १] विहानि अभिह(हि)तानि वेरमिहतैरस्वैरस्थानि मसकतिल-कादीनि गुह्यप्रदेशे ज्ञेयानीति ॥ १५९ ॥

॥ अकचटविभागप्रकरणमंगलम् ॥

सत्तम-णवमो य रवी, चंदो वि य होइ पढम-तइएणं ।
भोमो बीय-चउत्थे, पंचम-छट्ठो य ससिसुओ भणिओ ॥ १६० ॥

सप्तमनवम वकारः, नवम च(ओ)कारः । एतौ सूर्यस्य । चन्द्रः प्रथम-तृतीयैः 'अ इ' । भौमो द्वितीय चतुर्थैः 'आ ई' । बुधः 'उ ऊ' ॥ १६० ॥

एक्कारस सूरसुओ, जीवो दसमे य अट्ठमे सुक्को ।
बारसमो वि य राहू, एते सरसामिया भणिया ॥ १६१ ॥

एं शनिः । ओ गुरुः । शुक्र ए । अः [प ११४ B १] राहुः । स्वराणां स्वा(सा)मित्वं महात्मानं [illegible] ज्ञेयाः ॥ १६१ ॥

॥ स्वरक्षेत्रमयनम् ॥

रवि-भोम-सुक्क-बुह-गुरु-सणि-च(चं)दो राहु अट्ठमो एते ।
अ क च ट त प य स वग्गाण होंति खेत्ताहिवा णियय ॥ १६२ ॥

अ क च ट त प य स वर्णानां ग्रहाः क्षेत्राधिपा ज्ञेयाः । [illegible] मिता(मता)मिहासहितैर्ज्ञेया इति ॥ १६२ ॥

पण्हक्खरसंखगु(गु)ण, तिहिसहियं उ(ओ)भरत्थपरिसुद्धं ।
भत्त(सित्ते)हि भागसेसे, सुजा(ज्जा)इ[प ११५ B १]माहा मुणेयव्वा ॥१६३॥

सुन्नं छएण वा (घा)उरो, तिण्णि य दो तह य रूयमिक्क तु ।
सुरावीण एते, उमा(उसा) संखा तहा कमसो ॥ १६४ ॥

रिक्तपाक्षनम् ॥ १६३-१६४ ॥

छाया रासी होरा, पण्हक्खरम च होइ तीसगुणं ।
पक्खो वा तिण्णि सया, सद्वासतिहि(?) तं सव्वं ॥ १६५ ॥

तीसगुणं काऊणं, सीया(तीसा)ए हायए संया कालं ।
जं सेसं सा उ तिही, वोच्छं णक्खत्त-करणं से ॥ ३६६ ॥
लद्धाइ(ओ) जा तिहीओ, हीणा रूवेण कण्हपक्खस्स ।
सु(मु?)कंमि(पि?) दोहिं च भवे, मासस्स नामरिक्खगणं ॥ ३६७ ॥

सर्वदा प्रश्नकालिनी छाया राश्य(श)यो द्वादश । होरेति पचदशानां सज्ञा । प्रश्नाक्षरश्च । [प०२२५,पा०२][सर्व?]मेतदेकीकृत्य तृत्सत्या(त्रिंशता)गुणा शून्यक्षेपः ३६० वर्तमानातिथियुक्तं च कृत्वा । शेष गतार्थम् । अनादर्श(र्शे?)मेतत्तिथी(थि)नक्षत्रकाढम् ॥ ३६५–३६७ ॥

गंधव्वाह(इ) अवग्गे, दिट्ठे विज्जाहरा कवग्गंमि ।
पमाहाहा(?) [च]वग्गंमि, णागय(?) य(ट)वग्गमिति ॥ ३६८ ॥
[इयं गाथा अस्पष्टार्था । न चास्या व्याख्यालेशो लभ्यते । –सपादकः ।]
जक्खा य [त]वग्गंमि, देवा भणिया तहा पवग्गंमि ।
णागा य यवग्गंसि, भूया जाणे सवग्गंमि ॥ ३६९ ॥

तवर्गाधिके प्रश्ने यक्षा । पवर्गाधिके देवा । यवर्गाधिके नागा । स(श)वर्गाधिके भूताः ॥ ३६९ ॥

पेया य पवग्गंमि, जाण सकारे य तह पिसाया य ।
कोहंडा य हकारे, एवं जाणिज्ज[प०२२६,पा०१]णुक(क्क)मसो ॥ ३७० ॥

ख(ष)काराधिके प्रश्ने प्रेताः । सकाराधिके पिशाचाः । हकाराधिके कुष्माण्डाः ॥ ३७० ॥

अणुणासिएसु असुरा, णायव्वा यं(अं)मि दीसए जंमो ।
सविसग्गंमि अकारे, जक्खा सुणया य संजोए ॥ ३७१ ॥

अनुनासिकबहुले असुरा । अ(अ)कारः सानुस्वारः, तदधिके प्रश्ने यमो ज्ञेयः । अकारः सविसर्गः, तदधिके प्रश्ने यक्षा ज्ञेयाः । सयोगाक्षराधिके प्रश्ने स्वा(श्वा)नरूपिणो यक्षा ज्ञेयाः ॥ ३७१ ॥

एएहि अक्खरेहिं, जाणसु अभिघाइएसु मरणं तु ।
जो(जा) जस्स देवया अक्ख[र]स्स तेणेव सा भणिया ॥ ३७२ ॥

यस्य यस्य देवताविशेषस्य येऽक्षराः पूर्वाभिहितास्तैरहि(रभिह)तैस्तस्मात् तस्मात् देवताविशेषात् सकासा(शा)न्म[प०२२६,पा०२]रणमपि ज्ञेयम् ॥ ३७२ ॥

पढमय-बीय(वि-तिय)चउत्थो, पंचमवग्गो य तह य णायव्वो ।
वाइय-पित्तिय-सिंभिय-सन्निवाइय अक्खरा कमसो ॥ ३७३ ॥

प्रथमवर्गाधिके प्रश्ने वातिका व्याधिरादेश्या(श्या) । द्वितीयवर्गे पैत्तिका । तृतीयवर्गे श्लेष्मा । चतुर्थवर्गाक्षराधिके प्रश्ने सान्निपात. । पञ्चमवर्गाक्षराधिके प्रश्ने क्षयो व्याधिरादेश्यः । मद्गुरन्यस्य वा य व्याधिकृत्पृच्छतीति ॥ ३७३ ॥

पणयालसयं अट्ठुत्तरं च दोद्वासम्माहिणुय(यो)रासी ।
अयसा(से)साणं छण्हं, ण्हलेपरिया हवइ विट्ठी(ट्ठी) ॥ १७४ ॥

पूर्वोक्तिरास्य प्रागस्यथ्येन गुणका(ः)निम्ममय प्रमाणरसहितं कृत्वा गुणयेत् ॥ १७४ ॥

पय य सत्त य णव तेरसे य अट्ठारसमे य सोलसय ।
पणवीसं तिपीसं, जाणसु गुणकार रासीओ ॥ १७५ ॥

पूर्वोक्तः प्रमा षष्ठिवा गुणका(ः) यथासिकमस्य[व]स्थितकं गुण्य सोधनियो यथार्थं विशोधयेत् ॥ १७५ ॥

पणगतिगछसत्तचउम्मा य ते होंति सोहणा कमसो ।
पम धूमे(म) सीह साणा, वसहम्मि पुक्खिविया ण्ते ॥ १७६ ॥
णियम(णवय)म्मरमि जाणे, सोहणय चोदसे तु भाणि(?) ।
पण्णरसगए भरिया, सोलसवके वियाणाहि ॥ १७७ ॥
एसो [सो] सलेवो, भणिओ जिणभासिओ समासेण ।
जाव य णिहइ णाम, लामालामेसु सव्वेसु ॥ १७८ ॥

एव सः कथेन प्रकारेण आसिवाय गुणकाय गुडिपर्क कृत्वा, मे(वे)वरयम्मासि(ए) प्रापिले(ल)भावप्रयासका(माव) अनुकगुणाय जासाता(?)प्रासकंपनाय देयम् । गुणसूत्रमय कालपदे पासिक्षय देयमिति । जिनमहागप्रतिज्ञानार्थं सर्व यो प्रशामस्वरेणको अन्याभावादि स सर्व मरुम्ने प्रश्ने [इ]ति ॥ १७६–१७८ ॥

॥ प्रश्नव्याकरण समाप्तम् ॥

॥ संवत् १५१६ वर्षे चैत्र सु १ ॥ इति संपूर्णम् ॥



ज्ञानदीपकाख्यं

चूडामणिसारशास्त्रम् ।



नमिऊण जिणं सुरअणचूडामणिकिरणसोहिपयजुयलं ।
इय चूडामणिसारं कहिय मए जा(ना)णदीवक्खं ॥ १ ॥

जिनमर्हंतं सुरगणचूडामणिकिरणशोभितपादयुगलं नत्वा इदं चूडामणिसार ज्ञानप्रदीपाख्यं मया कथ्यत इति ॥ १ ॥

पढम-तईय-सत्तम-रंधसरा पढम-तईयवग्गवण्णाइं ।
आलिंगियाइं सुहया उत्तर-संकडअणामाइं ॥ २ ॥

अ इ ए ओ एते प्रथम-तृतीय-सप्तम-नवमाश्चत्वारः, तथा क च ट त प य श ग ज ड द ब ल सा एते प्रथम-तृतीय[वर्ग]चतुर्दशवर्णाश्च आलिंगिताः, सुभगाः, उत्तराः, सकटनामकाश्च भवन्तीति ॥ २ ॥

कुच-जुग-वसु-दिस-सरआ बीय-चउत्थाइं वग्गवण्णाइं ।
अहिधूमिआइं मज्झा ते उण अहराइं वियडाइं ॥ ३ ॥

आ ई ऐ औ एते द्वितीय-चतुर्थाष्टम-दशमाश्चत्वारः स्वराः, तथा ख छ ठ थ फ र षाः घ झ ढ ध भ व हाः एते द्वितीय-चतुर्थवर्गाणा चतुर्दशवर्णाः अभिधूमिताः, मध्यास्तथा उत्तराधरा विकटाश्च भवन्तीति ॥ ३ ॥

सर-रिउ-रुद्द-दिवाअर-सराइं वग्गाण पंचमा वण्णा ।
दड्ढाइं वियड-संकड-अहराहर-असुहणामाइं ॥ ४ ॥

उ ऊ अं अः एते पंचम-षष्ठिका एकादशम-द्वादशमाश्चत्वारः स्वराः, तथा ङ ञ ण न मा इति वर्गाणा पचमा वर्णाः दग्धाः विकटसकटा अधरा अशुभनामकाश्च भवन्ति ॥ ४ ॥

सव्वाण होइ सिद्धी पण्हे आलिंगिएहि सव्वेहिं ।
अहिधूमिएहिं मज्झा णासइ दड्ढेहिं सयलेहिं ॥ ५ ॥

प्रश्ने आलिंगितैः सर्वैः सर्वेषामेव सिद्धिर्भवति, [अभिधूमितैर्मध्या सिद्धिः] दग्धैः सर्वैः सिद्धिर्नश्यति ॥ ५ ॥

उत्तरसरसंजुत्ता उत्तरआ उत्तरुत्तरा हुंति ।
अहरेहिं उत्तरतमा अहरा अहरेहिं णायव्वा ॥ ६ ॥

उत्तरसंज्ञकैः स्वरैः सयुक्ता उत्तरसज्ञका एव वर्णा उत्तरतमा भवन्ति । त एव अधराधरसंज्ञकैः स्वरैः सयुक्ता उत्तरसज्ञका अधरसज्ञकाश्च भवन्तीति ॥ ६ ॥

अहरसरेहिं जुत्ता ते वग्गा हुंति अहरअहरतमा ।
कज्जाइ साहेंति सुअ(ह)रे अधमा अधमाइं किं बहुणा ॥ ७ ॥

अधरसंज्ञकैः स्वरैः संयुक्ता वर्गा वर्णा अधराधरतरसंज्ञका भवंति । ते च सुचिरकालेन अधमाधमानि कार्याणि साधयन्ति किंबहुनेति ॥ ७ ॥

दड्ढसरेहिं जुत्ता दड्ढतमा हुंति दड्ढया वण्णा ।
ते णासयंति कज्जं बलाबल मीसयेसु सयलेसु ॥ ८ ॥

दग्धसंज्ञकैः स्वरैः संयुक्ता दग्धसंज्ञका वर्णा दग्धतमसंज्ञका भवन्ति तेषां वस्तुनाशकत्वं भवति ॥ ८ ॥

आलिंगिएहिं पुरिसो महिला अहिधूमिएहिं सव्वेहिं ।
दड्ढेहिं होइ संढो जाणिज्जइ पण्हपडिएहिं ॥ ९ ॥

आलिंगितैर्वर्णैः प्रश्ने पतितैः पुरुषो भवति । अभिधूमितैः स्त्री । दग्धैर्नपुंसकमिति जानीयेति ॥९॥

जइ वग्गाण य वण्णा पढम-बीय-तीय-चउत्थ-पंचमया ।
तह विप्प-राय-वयसा सुद्दो विय संकरा य सयलाइं ॥ १० ॥

यदि वर्गाणां वर्णाः प्रथम-द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ-पंचमकाः, तदा विप्र-राजन्य-विट्-शूद्राः, अपि च संकरजातयः सर्व एव भवन्तीति ॥ १० ॥

एवेहिं वण्णेहिं कमेण बालो कुमारओ तरुणो ।
मज्झिमवयो वि थविरो जाणिज्जइ पण्हपडिएहिं ॥ ११ ॥

तथा एतैरेव वर्णैः प्रश्ने पतितैः क्रमेण बालः कुमारस्तरुणो मध्यमवया वृद्धश्च भवतीति जानीहि ॥ ११ ॥

आलिंगिएहिं विट्ठी मज्झा अहिधूमिएहिं सा होइ ।
दड्ढेहिं णत्थि विट्ठी जिणवयणं सच्चियं जाण ॥ १२ ॥

आलिंगितैर्वृष्टिः अभिधूमितैर्मध्यमा वृष्टिः, दग्धे नास्ति वृष्टिरिति जिनवचनं सत्यमेव जानीहि ॥ १२ ॥

अइउप्पज्जइ सस्सं पण्हे आलिंगिएहिं वण्णेहिं ।
अहिधूमिएहिं किंचण णासइ दड्ढेहिं णो किंच ॥ १३ ॥

अतिप्रभूतमुत्पद्यते सस्यं प्रश्ने आलिंगितैर्वर्णैः अभिधूमितैः किंचिदुत्पद्यते दग्धैर्नश्यति अत्र नो किंचिदिति ॥ १३ ॥

संपत्तिकाल पण्हे वण्णो आलिंगिओ पयासेइ ।
अहिधूमिओ वि मूल्लं दड्ढो उण मासिय णूणं ॥ १४ ॥

प्रश्ने आलिंगितो वर्णः संपत्तिकालं प्रकाशयति । अभिधूमितोऽपि मूल्यम् । दग्धः पुनर्मासिकादि न्यूनमिति ॥ १४ ॥

तह पढम वीय तइआ वण्णा व्रुवंति तिण्णि कालाइं ।
मा इत्थ करह भंती जहसंखं सयलवग्गाणं ॥ १५ ॥

तथा समस्तवर्गाणा प्रथम-द्वितीय-तृतीयवर्णाः यथासख्यं त्रीन् कालान् ब्रुवन्ति। अत्र मा भ्रांतिं प्रकुरुतेति ॥ १५ ॥

आलिंगिएहिं मुक्कइ वाहिं अहिधूमिएहिं ण हु रोई ।
अहवा चिरेण कट्ठं दड्ढो मरणं पयासेइ ॥ १६ ॥

आलिंगितैर्व्याधिं रोगी मुचति, अभिधूमितैर्न मुचति, अथवा चिरेण कष्टात् मुंचति, दग्धश्च मरणमेव प्रकाशयति ॥ १६ ॥

विसमा दाहिणपासे वामे य वणं समा य पयडंति ।
वण्णा पण्हे पडिया पंचमया वेवि पासंमि ॥ १७ ॥

प्रश्ने पतिता विषमाः प्रथम-तृतीयवर्णा दक्षिणपार्श्वे तथा समाः द्वि-चतुर्थौ वर्णाः वाम-पार्श्वे पंचमका वर्णाः उत्तरपार्श्वे व्रण प्रकाशयन्ति ॥ १७ ॥

अट्ठ सिरो-मणि-वयण-हियय-कडि-उरु-जाणु-चरणजुयलेहिं ।
पण्हविलग्गा वग्गा वणाइं दरिसंति जहसंखं ॥ १८ ॥

अष्टौ वर्गाः प्रश्नविलग्नाः यथासख्य शिरोललाटवदने[षु] तथा हृदय-कटि-ऊरु-जानु-चरण-युगलेषु व्रणा निदर्शयन्ति ॥ १८ ॥

अणिलय-पित्तय-सेफय-संसग्गय-आहिघाययं रोगं ।
पयडंति पंचवग्गा जहसंखं पढम उद्दिट्ठा ॥ १९ ॥

प्रथमोद्दिष्टाः पचवर्गाः यथासख्य अनिलजं पित्तज श्लेष्मज ससर्गजं अभिघातजं रोगं प्रकटयन्ति ॥ १९ ॥

अइमंद-मज्झ-दारुणपीडाइं दिंति पण्हपडिआइं ।
आलिंगियाहिधूमियदड्ढा वण्णा जहासंखं ॥ २० ॥

आलिंगिताभिधूमितदग्धा वर्णाः प्रश्नपतिता यथासख्य अत्यन्तमन्दमध्यदारुणा पीडां प्रकटयन्तीति ॥ २० ॥

आलिंगिएहिं संधी ण हु संधी विग्गहे(हो) ण अहरेहिं ।
अहराहरेहिं कहिओ समरो सुहडाण णासयरो ॥ २१ ॥

आलिंगितैः सधिर्भवति, अधरैर्न च सधिर्न च विग्रहः, अधराधरैः सग्रामः सुभटानां नाशकर इति ॥ २१ ॥

विजयं उत्तरवण्णो ण जयं ण पराजयं वि अहरेहिं ।
अहराहरो पयासइ पराजयं णत्थि संदेहो ॥ २२ ॥

उत्तरो वर्णो विजयं प्रकाशयति, अधरो वर्णो न जयं न पराजयं, अधराधरश्च पराजय-मेवेत्यत्र नास्ति संदेहः ॥ २२ ॥

जइ पढमक्खरमहर अवसाणे उत्तरक्खरं पण्हे ।
ता उत्तरो सुमलिओ विवरीओ ताण विवरीयं ॥ २३ ॥

अधरोत्तरप्रश्ने यदा प्रथमाक्षरमधरं अवसाने च उत्तरमक्षरं भवति तदा उत्तरो ज्ञेयो भवति ॥ २३ ॥

पढमसरेण य जुत्ता पण्हे मघाविवज्जिया वण्णा ।
अणभिहिअणामआ दे पअडंति य जीवचिंताई ॥ २४ ॥

प्रथमस्वरेण युक्ता अभिघातविवर्जिता वर्णाश्च प्रश्ने अनभिहितनामकाः भवंति ते च जीवचिंतां प्रकटयन्ति ॥ २४ ॥

ससि-तइअ-पंच-सत्तम-नवमसरा दहसंखसरसहिया ।
क-च-टा पढमहीणा सहिया य-स-हेहिं जीवक्खा ॥ २५ ॥

प्रथम-तृतीय-पंच-सप्तम-नवमाः स्वराः दशमस्वरसहिताः, तथा कवर्ग-चवर्ग-टवर्गाः पंचमहीनाः, यकार-सकार-हकारसहिता एते पंचविंशतिवर्णाः जीवाख्या भवन्तीति ॥ २५ ॥

बीओ छट्ठो सरओ सविसग्गो तह व-सक्खरोपेओ ।
तह उण पंचमहीणा त-पवग्गा धाउणामा उ ॥ २६ ॥

द्वितीयः षष्ठः स्वरः, सविसर्गाः, तथा वकार-षकारोपेताः तथा पुनस्तवर्गः पवर्गः पंचमहीनः एते त्रयोदशवर्णा धातुनामका भवन्ति ॥ २६ ॥

ई ऐ औ सरजुत्ता र-ल-या ङ-ञ-ण-न-माई वण्णाइ ।
एआरह मूलक्खरा पयासिआ जिणवरिंदेण ॥ २७ ॥

चतुर्थाष्टमदशमस्वरयुक्ता र-ल-वकारा ङ-ञ-ण-न-मास्तेचैकादश वर्णा मूलाक्षरसंज्ञका भवंतीति । एतेनैवमुक्तं भवति प्रश्ने धात्वक्षरा, मूलाक्षरैर्जीवाक्षरा धात्वक्षरैर्बाधावर्तैः [illegible] इति मात्र वर्णा विचार्याः ॥ २७ ॥

अट्ठीजीवक्खरए मूलं जीवं वि मूलअक्खरए ।
धाउं उण आणिज्जइ धाउक्खरएण किं चोज्जं ॥ २८ ॥

मुष्टौ जीवाक्षरैर्मूलं ज्ञातव्यम् जीवं च मूलाक्षरैः धातुं धात्वक्षरैरेवेति किमित्याश्चर्यमिति ॥ २८ ॥

बहुपढमवग्गवण्णा अह बहुबिंदु विसग्गसंजुत्ता ।
बहुवण्णा जइ पण्हे ता सुण्णं मुट्ठिचिंताइ ॥ २९ ॥

प्रश्ने यदि बहवः प्रथमवर्गवर्णा भवन्तीति अथवा बहुबिंदुविसर्गसंयुता भवन्ति अथवा प्रश्न एव बहवो भवन्ति तदा मुष्टिचिन्तायां शून्यं भवति ॥ २९ ॥

---

१ ब जीवक्खा ।

विसमसरा ऊआरो वग्गाणं पढम-तइयवण्णाइं ।
दुप्पय-णराण एसा एआहाराण णहु होइ ॥ ३० ॥

विषमस्वराः प्रथम-तृतीय-पचम-सप्तम-नवमैकादशमाः, तथा ऊकारश्च, तथा वर्गाणां प्रथम-तृतीयवर्णाश्च एते द्विपदेषु नराणा वर्णाः, एतदाहाराणा राक्षसानां न भवन्तीति ॥ ३० ॥

बीओ दसमो सरओ वग्गाणं बीयवण्णया सयला ।
दिसंति जइअ पण्हे ता मुणह[1] चउप्पयं जीवं ॥ ३१ ॥

यदि प्रश्ने चतुर्थाष्टद्वादशः स्वरो भवति, तथा वृश्चिकादीना जातिं दृष्टिं च व्याघ्रादिकं तं तवर्गवर्णो वदति, तथा वर्गाणा चतुर्थो वर्णाश्च तदा चतुष्पादा जीवा भवन्ति ॥ ३१ ॥

जइ वग्गाण य वण्णा पंचमया हुंति पण्हपडियाइं ।
ता मुणह णरअवासिय भूअपिसाचाइं सव्वाइं ॥ ३२ ॥

यदि वर्गाणां पंचमा वर्णाः प्रश्ने पतन्ति भवन्ति, तदा नारकवासिनो भूतपिशाचाश्च सकलान् जानीतेति ॥ ३२ ॥

मत्ता त-पवग्गेहिं य-शवग्गेहिं हुंति सउणा य ।
सिद्धा सरेहिं भणिया देवा उण क-च-टवग्गेहिं ॥ ३३ ॥

तवर्ग-पवर्गाभ्या मर्त्याः, यवर्ग-शवर्गाभ्या शकुनाः, स्वरैः सर्वैरेव सिद्धाः, देवाः पुनः कवर्ग-चवर्ग-टवर्गैर्भवन्तीति ॥ ३३ ॥

चवइ कवग्गो पण्हे लद्धो थलचारियं विहंगमयं ।
तं चिअ अइप्पहाणं[2] तवग्गओ णत्थि संदेहो ॥ ३४ ॥

प्रश्नलब्धः कवर्गः स्थलचारिण विहगमं वक्ति । तमेव स्थलचारिणं विहंगमं अतिप्रधानं मयूरादिकं तवर्गो वक्तीति संदेहो नास्ति ॥ ३४ ॥

जइ अ चवग्गो लद्धो तह पक्खी[3] होइ जलयरो णूणं ।
तं पि टवग्गे सिट्ठं चवइ पवग्गो गुहसयंधं[4] ॥ ३५ ॥

यदि चवर्गो लब्धः तदा जलचराः पक्षिणो भवन्ति । नूनं तमपि जलचर पक्षिणं श्रेष्ठं हंसादिक टवर्गो वक्तीति । अधमं (अन्ध ?) च गुहाशयं उलूकादिकं पवर्गो वक्तीति ॥ ३५ ॥

पण्हे कवग्गवण्णा कालोरय-सिंगिणो पयासंति ।
राजीवसप्पजाई चवग्गवण्णा य दंतत्थं ॥ ३६ ॥

प्रश्ने कवर्गवर्णाः कालोरगाश्च शृगिणश्च वृषभादीनि प्रकाशयन्ति । राजीवसर्पजातिं शंखचूडादिकं दन्तास्त्रं च हस्तिप्रभृतिक चवर्गवर्णाः प्रकाशयन्तीति ॥ ३६ ॥

---

१ प्र० मुणहु । २ प्र० अइप्पमाण । ३ प्र० पक्खी । ४ प्र० चवइ पवग्गो सभयन ।

गोमाससप्पजाई टवग्गवण्णा फुडं पयासंति ।
लहुअविसाण जाई विहीणं होई तवग्गवण्णेहिं ॥ ३७ ॥

गोमांसो सर्पजातिं टवर्गवर्णाः स्फुटं प्रकाशयन्ति । लघुकविषाणां जंतूनां कृमिकादीनां जातिं दर्शि च स्वाभाविकं वं तवर्गो वर्णो भवति ॥ ३७ ॥

विसमच्छ-वाहि(ढि ?)दुंदुहि-कीडविसेसाइ किं बुज्झ ।
जइ किर लद्धो पण्हे पवग्गओ पण्हचउरेण ॥ ३८ ॥

यदि प्रश्नचतुरेण प्रश्ने पवर्गो विलब्धस्तदा विषमत्स्यान् नृगिकामत्स्यादीन् पंखान् मकर मत्स्यादीन् दुंदुभिमत्स्यादिकीटविशेषकान् वक्ति अत्र किमाश्चर्यमिति ॥ ३८ ॥

ससि-जलण-बाण-मुणि-गह-रुद्द-सरा वग्गाण बु-तीयवण्णा य ।
कुव्वंति धम्मघाउं अधम चिय सेससरवण्णा ॥ ३९ ॥

प्रथम-तृतीय-पंचम-सप्तम-नवमैकादशमाः स्वराः, तथा कवर्गादिसप्तवर्गाणां द्वितीयवर्णाश्च धात्वधातुं वदन्तीति ॥ ३९ ॥

रवि-रुद्द-पक्खससरओ पंचमहीणा कवग्गवण्णा य ।
कुणयं चवन्ति सारं सत्तमवग्गो मुणिंदुसरओ य ॥ ४० ॥

द्वादशैकादश-द्वितीयस्वराः पंचमहीनाः कवर्गवर्णाश्च कनक वदन्ति । रजतं च सप्तमो वर्गः तथा सप्तमः प्रथमः स्वरश्चेति ॥ ४ ॥

तवं च तइओ सरओ पंचमहीणो चउत्थओ वग्गो ।
लोहं दसमो सरओ अट्ठमवग्गो मैकारो य ॥ ४१ ॥

ताम्रं तृतीयस्वरः पंचमहीनः चतुर्थो वर्गश्च लोहं दशमस्वरः तथाऽष्टमो वर्गो मकारश्च भवति वचनपरिणामेन पूर्वतो न वर्तत इति ॥ ४१ ॥

कंसं तइओ वग्गो पंचमहीणो कवग्गपंचमओ ।
अट्ठम-पंचमसरओ पण्हे लद्धो पयासेइ ॥ ४२ ॥

कांस्यं प्रभु पंचमहीनस्तृतीयो वर्गः, तथा कवर्गपंचमो वर्णश्च, तथाऽष्टमः पंचमः स्वरः प्रश्ने लब्धः प्रकाशयतीति ॥ ४२ ॥

छट्ठसरो एकंतो पंचमवण्णो अ सईयवग्गस्स ।
जइ पाविज्जइ पण्हे ता णूणं सीसगं मुणह ॥ ४३ ॥

षष्ठस्वर एकस्मिन् तथा तृतीयवर्गस्य पंचमो वर्णश्च यदि प्रश्ने प्राप्यते तदा नूनं सीसकं कथयन्ति ॥ ४३ ॥

ग-प-फ-भ-मा ऊ वण्णा पण्हे लद्धा कुणंति पित्तलय ।
ण-त-था द-धा इ-आरा कंसं ण हु अत्थि संदेहो ॥ ४४ ॥

---

१ अ वर्ण । २ अ कं । ३ अ तद्द । ४ अ चत्तो कि । ५ अ सम्मत ।

नकार-पकार-फकार-[मकार]-भकारस्तथा ऊकारश्च एते प्रश्ने लब्धाः पित्तलकं कथयन्ति । णकार-तकार-थकार-दकार-धकार-इकारश्च एते कांस्यं कथयन्ति । तथा अत्र न खलु संदेहोऽस्तीति ॥ ४४ ॥

कणयक्खरं पयासइ मरगयमाणिक्कपहुईरयणाइं ।
मुत्ताहीरयपहुइं तारक्खरयं णे संदेहो ॥ ४५ ॥

कनकाक्षर मरकतमाणिक्यप्रभृतिरत्नानि प्रकाशयति, ताराक्षरं च मुक्ताहीरकप्रभृतिकं प्रकाशयति ॥ ४५ ॥

कक्करतालयपहुदिं [तं]वक्खरयं [च] भणइ णो चित्तं ।
लोहक्खरेहिं जाणह रयणाइं इंदनीलपहुदीणि ॥ ४६ ॥

ताम्राक्षरः तालकप्रभृतिं भणति नात्र चित्रम्, लोहाक्षरैश्च इन्द्रनीलप्रभृतीनि रत्नानि जानीतेति ॥ ४६ ॥

कंसक्खरं पयासइ रयणऽसेसाइं काचपहुदीणि ।
सेसं सीसयपहुदिं पित्तलसीसाइ अक्खरयं ॥ ४७ ॥

कसाक्षर काचप्रभृतीनि रत्नविशेषाणि प्रकाशयति । शेष पित्तलसीसकायक्षर शीशकप्रभृतीनि रत्नविशेष प्रकाशयति ॥ ४७ ॥

उत्तरवण्णपहाणं पण्हे गढियं पयासए णिच्चं ।
धाउमगढिअं अहरं अक्खरयं भणइ सच्चमियं ॥ ४८ ॥

प्रश्ने उत्तरवर्णाः प्रश्नमक्षरं नित्य घटितं धातु प्रकाशयति । अधरमक्षर अघटितं धातुं भणतीति सत्यमिदम् ॥ ४८ ॥

आलिंगिएहिं जाणह कंकणकेऊरपहुदि आहरणं ।
अहरक्खरेहिं गढिअं कच्चोलयपहुति भायणयं ॥ ४९ ॥

घटिते धातोर्लब्धे सति पुनरपि प्रश्ने आलिंगिताक्षरैः घटितं केयूरप्रभृतिकमाभरणकं भवतीति । अधराक्षरैर्घटित कच्चोलकप्रभृति भाजन भवति ॥ ४९ ॥

उत्तरवण्णपहाणं पण्हे दरिसेइ अहिणवाहरणं ।
अहरक्खर अपहाणं उवमुत्तं णत्थि संदेहो ॥ ५० ॥

आभरणे प्राप्ते सति पुनरन्यप्रश्ने उत्तरवर्णप्रधान प्रश्नमभिनवाभरण दर्शयति । अधराक्षरेऽप्रधान च उपाभरण दर्शयतीति नास्ति सदेहः ॥ ५० ॥

सव्वे उत्तरवण्णा भवंति सुरलोअलोअणाहरणं ।
अहरक्खराइ णूणं माणवलोयस्स जंतूणं ॥ ५१ ॥

पुनरन्यप्रश्ने सर्व एवोत्तरवर्णाः सुरलोकानामाभरण ब्रुवन्ति । अधराक्षराणि मानवलोकस्य द्विपदचतुष्पदजतूनामाभरण ब्रुवन्ति ॥ ५१ ॥

१ प्र० ॰पहुदि । २ प्र० णत्थि । ३ प्र० सच्च च ।

दुप्पयवण्णा पण्हे दुप्पअलंकूण षवइ आहरणं ।
सो चि णर-णारयाण विहगाण विहगवण्णेहिं ॥ ५२ ॥

पुनरप्यप्रश्ने द्विपदवर्णा द्विपदलंकूलानामाभरणं कुर्वन्तीति । विहगवर्णाश्च विहगनामाभरणं कुर्वन्ति ॥ ५२ ॥

जइ य चउप्पयवण्णा पण्हे लब्भाइ हुंति पउराइ ।
मा करहु इत्थ भंती जाणिज्ज चउप्पयाहरणं ॥ ५३ ॥

पुनरप्यप्रश्ने यदि चतुष्पदवर्णाः प्रश्ने लभ्याः प्रचुरा भवन्ति तदा मा भ्रान्तिं कुरुत चतुष्पदाभरणं जानीतेति ॥ ५३ ॥

विस-कुच-चेयट्ठमया सरया धरिसंति उड्ढआहरणं ।
ससि तिय-गह-सत्तमया मज्झगे सेस अद्धाण ॥ ५४ ॥

प्रथम-द्वितीय-चतुर्थाष्टमकाः स्वराः ऊर्ध्वाभरणं दर्शयन्ति । प्रथम-तृतीय-पञ्चम-सप्तमकाश्च मध्याभरणं दर्शयंति ॥ ५४ ॥

आहरणाण य वण्णा संसिट्ठा हुंति जइ य तप्पउरा ।
ता तं रयणणिबद्धं मायण्णयं ताण वण्णेहिं ॥ ५५ ॥

यद्याभरणानां वर्णाः संश्लिष्टाः संयुक्ताः तद्वर्गप्रचुरा भवन्ति तदाऽऽभरणं रत्ननिबद्धं भवति मात्रावर्णैश्च संकीर्णत्वेन रत्ननिबद्धं भवति ॥ ५५ ॥

अह पउरउत्तरक्ख ता रयणं कुड्डजाइयं मुणह ।
तं अहरक्खरयक्खं किचिमयं मीसिए मिस्सं ॥ ५६ ॥

यदि तदा प्रचुरोत्तराक्षरसंयुक्ते कृत्रिमजातिमिश्रितं च इदं जानीतेति ॥ ५६ ॥

उत्तम-मज्झिम-अधमा हुंति य णाणा तहा जहासंखं ।
आलिंगियाहिधूमियदड्ढयपत्तेहिं पण्हेहिं ॥ ५७ ॥

तथा आलिंगिताभिधूमितदग्धके प्राप्ते प्रश्ने उत्तममध्यमाधमानि नाणकानि टंककानि दिर्वाकारिकानि यथासंख्यं भवन्तीति ॥ ५७ ॥

पढमं तरुण वण्णा तह ससि-गहसंमिओ सरो चेव ।
क-च-टादुमाण(? °ण दुइय)वण्णा पसमओ दुज्झो सरो वेवि ॥ ५८ ॥

क-च-टादिवर्णानां सप्तमो प्रथमो वर्णस्तथा प्रथम-पञ्चमस्वरश्च यदि भवन्ति तरुणा-मासादीनां वाचकाः कवर्ग-चवर्ग-टवर्गाणां च द्वितीयवर्णाः क-च-टादयस्तथा प्रथम-द्वितीयौ स्वरौ च यदि पंच वर्णाः क्रमात् द्रामादीनां वाचका इति ॥ ५८ ॥

रिठ-बाण-रुदसरओ पंचमवण्णा तिणाइ अपदि ।
सेसदुइज्जा वण्णा बाही वग्गाण चत्तारि ॥ ५९ ॥

पष्ठ-पंचमैकादशस्वरः, तथा वर्गाणां कवर्गाणां सप्तानां पंचमाश्च वर्णास्तृणानि दूर्वादीनि जल्पन्ति । शेषा द्वितीया वर्णाः चत्वारि तवर्ग-पवर्ग-यवर्ग-शवर्गाणां चतुर्णां वल्लीनां वूलीप्रभृतिकां जल्पन्ति ॥ ५९ ॥

अट्ठम-चउअं तिसरा चउत्थवण्णेण ठाइआ तिण्णि ।
जंपंति ख-छ-ठ-फाओ जाइविसेसाइं गुम्माइं ॥ ६० ॥

कवर्गादिसप्तवर्गाणा चतुर्थवर्णेन स्थापिताश्चतुर्थाष्टमातिमास्त्रयः स्वराः ख-छ-ठ-फा जातिविशेषान् गुल्मान् जल्पन्ति ॥ ६० ॥

ग-ज-डेहिं होंति य लया सालादि सत्तमसरेहिं गहिएहिं ।
गहिएहिं दबलसेहिं प(ध ?)ण्णापहुदीनि जाणेह ॥ ६१ ॥

कवर्ग-चवर्ग-टवर्गाणा तृतीयवर्णेन भवन्ति तृतीय-सप्तमाभ्या स्वराभ्यां शालादिकान् ॥ वृक्षान्, तवर्ग-पवर्ग-यवर्ग-शवर्गाणा चतुर्णां तृतीये वर्णे गृहीते धान्यकादीन् जानीतेति ॥ ६१ ॥

जल-साहारण-जंगलदेसपभूयं चवंति भूरुहयं ।
आलिंगिय-अहिधूमिय-दड्ढयवण्णा जहासंखं ॥ ६२ ॥

जलसाधारणं जागलदेशप्रभूत भूरुह यथा जलज कमलोत्पलादिक जागलजं करीरकरमर्दादिकं तानेतान् यथासख्य आलिंगिताभिधूमिता वर्णा ब्रुवन्तीति ॥ ६२ ॥

तरवो हुंति असोया संणिहिया उत्तरेहिं वण्णेहिं ।
अधरसरेहिं अधमा पण्हे पडिएहिं दूरट्ठा ॥ ६३ ॥

उत्तराक्षरैरशोकाद्यास्तरवः प्रत्यासन्ना भवन्ति । अधराक्षरैरधमा वृक्षाः सर्वत्र शाखोटकादयो दूरस्था भवन्ति ॥ ६३ ॥

संजुत्त-असंजुत्ता जहाकमं लद्ध[पण्ह]वण्णेहिं ।
फलियाफलिया तरुणो केवलिनाणेण भासंति ॥ ६४ ॥

संयुक्ता असयुक्ता लब्धाः प्रश्नवर्णाः यथाक्रम फलिताफलितान् तरून् केवलिकाज्ञानेन भाषन्ति इति ॥ ६४ ॥

तह दिवस-मास-पक्खय पुणो वि मासे वि तह य वच्छरए ।
जहसंखं लाहसुहं एसु य सयलेसु वग्गेसु ॥ ६५ ॥

एषु सर्वेषु वर्गेषु कवर्गादिसप्तस्वपि वर्गेषु एकद्वित्रिचतुःपचमके वर्णे तस्मिन्नेव दिवसे लाभसुखादिक चिन्तितं भवति । सर्वैर्द्वितीयवर्णैर्मासे उद्भवति, सर्वे तृतीयवर्णे पक्षे उद्भवति, सर्वे चतुर्थवर्णे पुनर्मासे एव उद्भवति, सर्वे पचमवर्णे सवत्सरे उद्भवति ॥ ६५ ॥

उत्तरवण्णपहाणो उत्तरअयणं[1] पयासए पण्हे ।
अहरक्खरेसु पेण्हे[2] दक्खिणअयणं णं[3] संदेहो ॥ ६६ ॥

---

१ प्र० उत्तरायणं । २ प्र० अधराक्षरपहाण । ३ प्र० दक्खिणायण णत्थि ।

स्वरवर्णप्रधानप्रश्नः स्वराणां प्रकाशयति । व्यञ्जनप्रधानश्च दृष्टिप्रश्नं प्रकाशयति अत्र नास्ति सन्देहः ॥ ६६ ॥

पढमक्खरेण सिसिरो महु वि सहा बीयएण वण्णेण ।
तीयक्खरेण गिम्हो चउत्थेण य पाउसो होइ ॥ ६७ ॥

कवर्गादिसप्तवर्गाणां प्रथमाक्षरेण प्रश्नप्रश्नेन शिशिरः, तथा द्वितीयवर्णेन मधुर्वसंतः, तृतीयाक्षरेण ग्रीष्मः चतुर्थाक्षरेण प्रावृड् भवति ॥ ६७ ॥

सत्तमसरेहिँ सरओ कहिओ अणुणासिएहिँ हेमंतो ।
अं अ [ः ?] इ उ अक्खरयं पयासियं जिणवरिंदेण ॥ ६८ ॥

सप्तमस्वरे शरत् कथिता, अनुनासिके हेमंतः । इदं स्वराक्षरं जिनवरेन्द्रेण प्रकाशितमिति ॥ ६८ ॥

होइ च-टेहिँ चित्तो वेसाहो होइ ग-ज वण्णेहिँ ।
जिट्ठो वि ड-ब-ल-सेहिँ इ मो घ-झ-ढेहिँ आसाढो ॥ ६९ ॥

चवर्ग-टवर्गयोः प्रथमाक्षराभ्यां चैत्रो भवति । तथा कवर्ग-चवर्ग-टवर्गाणां तृतीयाक्षरे वैशाखो भवति । तवर्ग-पवर्ग-यवर्ग-शवर्गाणां तृतीयाक्षरैर्ज्येष्ठो भवति । चतुर्थ-सप्तमस्वराभ्यां तथा कवर्ग-चवर्ग-टवर्गाणां चतुर्थाक्षरैराषाढो भवति ॥ ६९ ॥

णहु होइ ध-भ-व-हेहिँ सर रिउसर ङ-ञ-णेहिँ भद्दवओ ।
ण ऊ बिन्दु विसग्गा सेसयवण्णेहिँ आसिणओ ॥ ७० ॥

तवर्ग-पवर्ग-यवर्ग-शवर्गाणां चतुर्थाक्षरैर्नभः श्रावणो भवति । पंच-षष्ठाभ्यां स्वराभ्यां कवर्ग-चवर्ग-टवर्गाणां पंचमाक्षरैर्भाद्रपदो भवति । अनुस्वार-विसर्गाभ्यामाश्विनो भवतीति ॥ ७० ॥

तह त-प कत्तिकमासो कहिओ पढमेहिँ दोहिँ वण्णेहिँ ।
य-शवण्णेहिँ वि दोहिँ मिगसरणामो य मासो य ॥ ७१ ॥

तवर्ग-पवर्गयोः प्रथमाक्षराभ्यां द्वाभ्यां तथा पुनः कार्त्तिको मासः कथितः, यवर्ग-शवर्गयोः प्रथमवर्णाभ्यां द्वाभ्यां मार्गशीर्षो नामधेयो मासः कथितः इति ॥ ७१ ॥

आ ई ख-छ-ठेहिँ सहो य फ-र पवण्णेहिँ होइ तह माहो ।
फग्गुणमासो ससि मुणिसरएहिँ तह कवग्गेण ॥ ७२ ॥

द्वितीय-चतुर्थाभ्यां स्वराभ्यां तथा कवर्ग-चवर्ग-टवर्गाणां द्वितीयाक्षरैः सह पौषो मासो भवति । तवर्ग-पवर्ग-यवर्ग-शवर्गाणां द्वितीयवर्णैर्माघो मासो भवति । प्रथम-सप्तमस्वराभ्यां कवर्गेण प्रथमाक्षरेण फाल्गुनमासो भवतीति ॥ ७२ ॥

दो तिण्णि पंच अट्ठा पंच य अट्ठा य सत्त य दो तिण्णि ।
चारिय सत्त छक्का सत्त छक्का य चारिका ॥ ७३ ॥

॥ इति जिनेन्द्रकथितं प्रश्नचूडामणिसारशास्त्रं समाप्तम् ॥